चिंतन मनन

जीवन प्रवाह

अक्षयचन्द्र शर्मा



वाणी निलयम्

प्रकाशक
श्रीमती शारदा शर्मा
वाणी निलयम्
सादुल कॉलानी
बीकानर (राजस्थान)

शाखा
प॰ अक्षयचन्द्र शर्मा
१० जवाहरलाल नेहरु राड
कलकत्ता - ७०० ०१३
दूरभाप २२८ ६०४५

मुद्रक
तिरपति प्रिन्टर्स
१६ मेगो लेन,
कलकत्ता - ७०० ००१

प्रथम सस्करण १९९७
मूल्य १५० रुपये

उद्बोधन के स्वर

सचमुच ही आज विज्ञान के वरदानो से ससार कुटुम्ब की तरह छोटा बन गया है। सचार के तीव्रगामी साधनो से सारा विश्व प्रभावित हो रहा है। आज हम प्रान्त या राष्ट्र की दृष्टि से नही, केवल मानव की दृष्टि से नहीं — सम्पूर्ण वसुधामडल को ध्यान मे रख कर पेड पौधे, पशु-पक्षी, जल-स्थल और गगन सभी को एकाकार कर समवेत दृष्टि से चिन्तन के लिए विवश हैं। अत आवश्यक है — हमारी प्रज्ञा शुद्ध, हृदय उदार और कर्म विश्वमगल की भावना से अनुप्राणित हो।

यो हम अलग अलग काम धन्धो मे लगे हैं। किसान व श्रमिक, समाज सेवक व राजनेता, पत्रकार व कलाकार, डॉक्टर-वेद्य, व्यवसायी-उद्योगपति, वैज्ञानिक-दार्शनिक सभी नये बदलते रूपों मे कार्यरत ह। पर यह भी स्पष्ट है कि हम इस तेज दौड मे अपने भीतर उजडते भी जा रहे हैं। अकेलापन, स्वार्थ-परता, अहकार, हताशा, तनाव व उद्वेग के चक्रव्यूह मे भी फँसते जा रहे हैं।

हम आवश्यकता है — भीतरी शक्ति का स्रोत जगाने वाले उद्बोधन की। 'चिन्तन-मनन' का यह जीवन-प्रवाह इसी लक्ष्य के लिये समर्पित है।

चाहे हम राष्ट्र निर्माणकारी किसी भी कार्य मे लगे हो, हमे भीतरी शक्ति को जगाने की पदे-पदे आवश्यकता है। हमारी निष्ठा स्थिर रहे, कार्य सम्पादन मे हम स्वार्थ से ऊपर उठकर लोकहित को साथ रखे, किसी भी स्थिति म उदास-निराश न हो, इसके लिये हमे अपने को सस्कारित करते चलना है।

चिन्तन-मनन का यह सकलन मानवोचित गुणा का एक सजग प्रहरी है। सहयोग, सेवा, समर्पण, प्रेम, निष्ठा एकाग्रता, जैसे मूल्यो की ज्योति से हमारा जीवन जगमगाता रहे — ऐसी उदात्त भावना चिन्तनमनन की सुदृढ पृष्ठभूमि ह।

इसमे अभिव्यक्त भावनाए मानवता को सतत प्रेरणा देनेवाली हैं। पूज्य श्री अक्षय चन्द्रजी इसी प्रकार माग दशन देते रहे यही कामना एव प्रार्थना है।

पन्नालाल पारीक
ए-ए/९१ साल्ट लेक सिटी
कलकत्ता - ७१०० ०६४
दूरभाष ३३४-९२६०

जीवन - प्रवाह

शात धीर गभीर निरन्तर
सरस सलिल सी
निर्मल धारा
चिन्तन की चेतना
सजोये
प्लावित करती
नया किनारा।

महक रहे जिससे
वन-उपवन
खिले सुमन
आलोकित तन मन
विहसे राजहस
मानस के
पाकर नये नये
मुक्तादल
खिलते रहे
सृजन के शतदल।

गुरु गरिमा के
गिरि शृगो से
गहन मनन की मदाकिनी सी
अविरल
निर्मल
स्वय बनाती
अपनी राह।
सुधिजन!
बहता रहे निरन्तर
जीवन का यह
ललित प्रवाह॥

— बशी धर शर्मा

अपनी ओर से

ज्ञान क अतल अकूल महा सागर के तट पर, मनु-पुत्र मानव एक बार चाहे शिशु-सा विस्मित स्तब्ध बना खडा रहा हो, पर, अन्त मे उसने महर्षि अगस्त्य बन सागर को तीन चुलुओ मे पीने का सकल्प किया। ये तीन चुल्लू हैं — श्रवण, मनन एव निदिध्यासन।

इन तीनो के मध्यवर्ती है मनन, जो एक ओर सम्यक् श्रवण का सुफल है और निदिध्यासन का अजस्र प्रेरणा-स्रोत।

'चिन्तन-मनन' का यह द्वन्द्व एक दूसरे का पूरक है। अन्त मे चिन्तन अपने को खोकर मनन मे समाहित हो जाते हैं। चिन्तन मे किचित् चिन्ता है, थोडी बौद्धिक प्रक्रिया मुखर है ओर बाह्य मुखता भी-पर इसकी परिणति 'मनन' मे है, जहा मन्थन से प्राप्त नवनीत है, अन्तर्मुखता है और स्वरूप बोध का दिशा-निर्देश।

तभी 'मनन' हरिवश पुराण के अनुसार 'मननान्मुनिरेवासि' 'मनन से ही मुनि वनता है' के साक्ष्य मे मुनि तक की यात्रा करता है। मत्र का भी अर्थ ह - जो मनन करने से 'त्र' यानी त्राण करे, रक्षा करे।

कलकत्ता से प्रकाशित दैनिक पत्र 'जनसत्ता' के सम्पादक श्री श्यामसुन्दर आचार्य की आत्मीयता को ही सारा श्रेय है, जिसके कारण मैं इस पत्र के स्तम्भ (कहना चाहिये आलोकस्तम्भ) चितन-मनन मे प्रतिदिन लगभग ५ वर्षो से अनेक माध्यमा को — कथा, लोक-कथा गीत, सूक्ति, इतिहास, साहित्य, दर्शन, प्रभृति को — आधार बना कर सरल सुबोध भाषा मे जीवनानुभव प्रस्तुत करने का प्रयासी हूँ।

मन मे रहता है – ऐसा कुछ कहू – जो उजला हो, मधुर हो, सहज सरल हो, प्रेरक हो, उद्बोधक और हृदय ग्राह्य हो। मधु मधुर हो आर पीयूष सा हितकारी भी।

असल मे इस तुमुल कोलाहल कलह मे 'चितन-मनन' सहृदयो को यो भाता है – जैसे 'कामायनी कार' के शब्दो मे 'तपन मे शीतल मद बयार' हो।

जहा गत पाच वर्षो से दैनिक 'जनसत्ता' में 'चिन्तन मनन' के धारा प्रवाह प्रकाशन की लोकप्रियता ने मुझे सतत लेखन की प्रेरणा दी है वहीं सुधी पाठको के स्नेह ने मुझे निरन्तर उल्लसित किया है। इसके पूर्व प्रकाशन 'जीवन कला' को जिस रूप मे समादृत किया है – इसके लिये मैं हृदय से सभी के प्रति आभार व्यक्त करता हू।

साहित्य, शिक्षा और समाज सेवा म समर्पित सस्थान 'लक्ष्मीपत सिहानिया एज्यूकशन फाउन्डेशन' के न्यासियो का मैं साधुवाद दता हू जिनके रचनात्मक सहयोग से चिन्तन मनन का यह दूसरा भाग 'जीवन प्रवाह' प्रकाशित हुआ है। इति शुभम्।

विनीत –

गीता जयन्ती (१९९७ ई०) २०५४ वि०

सादुल कोलोनी

बीकानेर (राजस्थान)

चिंतन मनन

तीन चुल्लू मे सागर पान

कन्याकुमारी का तिकोना सिरा एक ओर महोदधि, दूसरी ओर रत्नाकर ओर सामने लहराता भारत महासागर। तट पर खडा है - कुभज, घडे से उत्पन्न-मिट्टी का पुतला, एक मानव। आज उसमे सकल्प जगा हे - इस सागर को, महासागर को, पीने का। जेसे ही सकल्प जगा, वह ऋषि बन गया-अगस्त्य ऋषि। उसने तीन चुल्लू मे महासागरो को पी लिया। यह मिथक है पुरातन-सनातन-अद्यतन।

हमारे सामने भी ज्ञान का महासागर ह, अतल अकूल। इसे हम पीना हे - तीन चुल्लू मे। ये तीन चुल्लू हैं - श्रवण, मनन और निदिध्यासन।

श्रवण करना कितना कठिन है। हम आधा सुनते हैं आधा नहीं सुनते। आधे सुने हुए मे हम मिलावट कर देते हैं, अपनी रुचियो की मिलावट, क्रोध की आसक्तियो की मिलावट। आइए, सुनना सीखे तन्मय हाकर। यह श्रवण-पहला चुल्लू। अब मनन-सोचे, विचारे, तर्क करे ऊहापोह से गुजरे, निर्मल मानस मे उतारे-मनन की यह भूमिका हमे मुनि बनाती हे - जो मनन करे वह मुनि।

अतिम चुल्लू है-निदिध्यासन, बार-बार ध्यान करना गहन से गहन चितन करना और उसे जीवन मे उतारना।

फिर लगेगा-ज्ञातव्य सभी ज्ञात है प्राप्तव्य सभी प्राप्त हे। ज्योति कलश या अमृत कलश बन गया है-यह मिट्टी का 'कच्चा भाडा।'

बदलते राज मे बदलते भाव

एक नया राजा ठकुर सुहाती कहने वाले चापलूसा की चौकडी से घिरा था फिर भी वह असलियत जानने का भी इच्छुक था। राजा का तलाश करने पर एक ९० वर्ष का स्वस्थ व स्मृति सपत्र वृद्ध व्यक्ति मिला। राजा ने अपने दादा व पिता के शासन के बार म जानने की इच्छा प्रकट की।

वृद्ध 'अन्नदाता। मैंने आपके दादा के राज्य म अपनी जवानी गुजारी ह पिता के राज्य म प्रौढ बना था आर अब वृद्ध हू। मैं उनके व आपके शासन के बारे मे कहने का अधिकारी नहीं। आज्ञा हो तो यह बताऊ कि उन दिना मे मेरा मन कैसा था। राजा ने निर्भय होकर बतान को कहा। वृद्ध -'आपके दादा साहब का राज्य था। म जवान था। सावन का महीना। तालाब का किनारा। सब सजधज कर आए थे। अचानक वर्षा हुई आधी चली अधेरा छा गया। मुझ से एक सुदर स्त्री गहनो से लडालूम टकरा गई। इतने म प्रकाश हो गया। मैंने उस स्त्री को उसके घर पहुचाया। उसके घरवाल इनाम देने लगे मैंने नही लिया। मैंने उस स्त्री से बात भी नहीं की उस पूरा देखा तक नहीं। यह थी मेरी जवानी - आपके दादासाहब के राज म।'

'फिर समय बीतता गया। मैं ६० वर्ष का हो गया। हमारी आर्थिक हालत जरा खराब हो गई। मुझे वह घटना याद आती और मन कहता - मूर्ख। तुमने व्यर्थ उस स्त्री को छोडा - गहने छीन लेता तो आज मौज करता। ऐसा मन हुआ - आपके पिताश्री के राज म।'

'और आज। कहत मुझे लाज आती हे सौ गुनाह माफ कर। मेरी स्त्री मर गई है मन कहता है - मूर्ख। गहने ही नहीं गहना के साथ उसको घर म डाल लेता ता आज जा दु ख पा रहा हू, न पाता।'

राजा समझता गया। वृद्ध का सादर घर पहुचाया। उसके लिए सुविधाजनक प्रबध की आज्ञा दी।

राजा समझ गया 'में कितन पानी म हू।'

जीवन — एक लीला

जीवन एक सग्राम ह। जीवन एक सघर्ष ह। जीवन म याग्यतम ही बचता ह। यह एक दृष्टि है खडित और भ्रात दृष्टि। पश्चिम इसी पर टिका है, जीता है, मरता है।

पर, भारत मानता है, जीवन एक लीला है एक क्रीडा। भगवान् यहा नरलीला करने आते हैं। लीला क्यो लीला का काई प्रयाजन नहीं। खेल-खेल के लिए, लीला का एक मात्र प्रयोजन ह-लीला।

जीवन एक खेलन का मैदान हे, खिलाडी की तबीयत रखकर यहा खेलना है, हार आर जीत मे सच्चा खिलाडी सम रहता है।

गीता को कहने का अधिकारी कौन हा? यह प्रश्न आया होगा - महर्षि कृष्ण द्वैपायन वदव्यास क सम्मुख। उनको लगा होगा - गीता वही कह सकता है जा बचपन में खूब खेला हा, जिसन जीवन को एक क्रीडा म बदल दिया हो। ससार म कौन ऐसा हागा, पीर या पैगबर अवतार या तीर्थकर - जा जीवन के रग-बिरग रगा से इतना रँग कर सुरगा बना हो पर बदरग नहीं।

अर्जुन ने कहा 'रणागण'। कृष्ण ने कहा, 'नहीं पार्थ-क्रीडागण।' अर्जुन ने कहा, 'विषाद।' कृष्ण ने कहा, 'प्रसाद'। अर्जुन आँसुआ से भींगा ह अश्रु आकुल ईक्षण वाला। पर, भगवान कह रहे हैं मुस्काराते हुए 'तमुवाच ऋषीकेश प्रहसन्निव भारत।' यही कहा न, फरा की बात छोड हार-जीत, सर्दी गर्मी सुख-दु ख सब मे सम। अपने लिए मत खेल।

सुख दु खे समे कृत्वा लाभालाभो जयाजया। ऐसा लगता ह - खेल के मदान के शब्द - नए सदर्भ म, धर्म व दर्शन मे जडे जा रहे हैं।

सिद्धि असिद्धि मे सम रहना यही समत्व है यही गीता है यही जावन हे ओर यही जीवन की साधना ह और सिद्धि भी।

अधी दौड के शिकार हम

क्षितिज पर सूरज की पहली सुनहरी किरण फूटी, एक सियारी ने अपनी लबी छाया दखी। वह कहन लगी 'हाय। आज मुझे कलेवे के लिए कम-से-कम एक ऊट चाहिए।' ओर वह ऊट की तलाश म निकल पडी। दोडती, भागती, भटकती रही-इतने मे सूरज माथे पर आ गया। उसने अपनी छाया देखी वह पेरा के नीचे जरा-सी थी। सियारी पछताने लगी। 'सारी मेहनत फिजूल गई मरे लिए ता एक खरगाश ही बहुत हे।'

पर जीवन की कहानी अभी शुरू हुई है। लाखा करोडा लाग इसी तरह किसी ऊट की तलाश म तृष्णा के व्यामाह मे, भटकते हापते दौडते मर जाते हैं। आर्प वाणी बीच-बीच म चेतावनी दती हे - 'तत किम्' इससे क्या होगा जरा रुको सोचो विचारो, यह दोड क्या किसके लिए? पर सभी इस अधदौड म शामिल हैं।

अधा की यह दौड लग रही
मतवाला सारा समाज हे।

अब समय आ गया है हम रजागुणी कर्म कोलाहल वाली ईर्प्याभरी दाड से जरा रुक। जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर, जीवन को एक अर्थ दें। फिर लगेगा जीवन मे उत्साह है उत्तेजना नहीं वेग हे, उद्वेग नहीं, सगीत है शोर नहीं।

चितन मनन

लका कितीक दूर ?

भगवान् राम ने लक्ष्मण से पूछा – 'लक्ष्मण, लका कितनी दूर हे?' लक्ष्मण ने उत्तर दिया – 'प्रभो। आलसियो के लिए तो बहुत दूर है, पर उद्यमिया के लिए यह एक हाथ दूर पैरो मे पडी हाजिर है।'

'राम पूछे रे लिछमणा,
लका कितीक दूर?
आलसिया अलगी घणी,
उद्दम हाथ हजूर।'

प्रश्न दूरी का नहीं प्रश्न हे – सकल्प का, प्रश्न हे – श्रद्धा का, प्रश्न है – धृति का उत्साह का। जब कोई प्रतिज्ञा कर लेता हे तो इतिहास और भूगोल की दूरिया सिमटने लगती हैं। काल की अनतता क्षणा मे डूब जाती हे। फिर इस पृथ्वी का विस्तार-आगन की वेदी जितना हे, उफनता गरजता सागर गोखुर हे पाताल थाली जितना और सुमेरु की गगन चुबी ऊचाई बन जाती हे बौनी-वल्मीक (बाबी) जितनी।

व्यवसायियो के लिए क्या देश, विदेश, परदेश – सभी अपने। हवा के लिए क्या सीमाए – वह जनपदा को, राष्ट्रो को सभी को चीरती बहती ह।

'किम् दूर व्यवसायिनाम्।'

चाहिए चलने की, बढने की एक तीव्र लालसा, एक धुन एक झाक।

मत कर पसार निज पेरो चल
चलने की जिसको रहे झोक
उसको कब कोई सके रोक?

(कामायनी)

भार नहीं — मेरा भाई है, फूल सा

पहाडी सर्पाकार पगडडी थी, ऊची-नीची टेढी-मेढी सीढीनुमा। तीर्थ यात्री धैर्य से, उत्साह का जगाए, बढ रहे थे। लगता था - पैर नहीं चल रह हें उम्र नहीं चल रही है काई आस्था इन्ह खींचे जा रही है। इनके बीच मे एक लडकी अपनी पीठ पीछे अपनी उम्र से चार पाच वर्ष छाटे पर माटे गाल-मटाल बच्चे का लादे ऊपर चढती जा रही थी। एक साधु भी इस मडली मे तीर्थ यात्रा पर था। वह उस लडकी को देखकर कहने लगा अपनी अक्खड भाषा म - 'अरी छोकरी। इस 'भार' को लादे क्या जा रही है, कहा जा रही है?'

लडकी तेश म आ गई कडक कर बोली - 'बोलना भी नहीं आता, साधु बना फिरता ह। यह भार ह? इसको तू भार कहता ह। यह है मेरा 'भाई फूल-सा भाई।' यह कहकर अपने कदमा को तेज करती, नए प्रकाश मे भर, गर्व से आगे चढ चली।'

सचमुच यह जीवन जो भार सा प्रतीत हाता हे प्यार से फूल सा हल्का भाई बन जाता है और सुरभित भी।

आज्ञा बिना फूल तोडना — चोरी

आयुर्वेद शास्त्र के महान आचार्य चरक मुनि औषधिया के अनुसधान मे बीहड वन खडा, उद्याना आर गिरि अचला म घूम रहे थे। साथ म उनक छात्र इस शाध मे सहयोग कर रहे थे।

एकाएक चरक की दृष्टि एक खेत म उग नए अदृष्टपूर्व पुष्प के ऊपर पडी। इसके पहले उन्होने सहस्रो पुष्पा के गुण-दोषा की जाच की थी पर यह नया ही फूल था। उनका मन पुष्प क लिए उत्सुक था पर पैर आगे नहीं बढ रह थे। एक शिष्य ने सादर पूछा 'गुरुदव। फूल ले आऊँ?'

'फूल तो चाहिए, पर खेत के मालिक की आज्ञा के बिना फूल को ताडना चारी हे न।'

शिष्य ने कहा, 'गुरुदव आपके पास जो राजाज्ञा है, जिसके अनुसार आप कहीं से भी वन-सपत्ति बिना किसी की अनुमति के ले सकते हैं।'

चरक ने कहा 'तुम्हारा कहना उचित ह। वना की बात अलग। यह खेत है। यहा प्रश्न राजाज्ञा का नही नैतिकता का ह। यदि हम प्रजा की सपत्ति का स्वच्छदता से उपयोग करगे तो राजकीय अधिकारी तो इन्हे लूट लगे।'

यह कह कर मुनि चरक तीन कास पैदल चलकर कृषक के पास गए और उसकी अनुमति पाकर ही उन्हाने पुष्प का लिया।

कार्य — आनन्द, थकान, टूटन ?

एक भव्य एव दिव्य देव मदिर का निर्माण हो रहा था। सहस्रा श्रमिक, शिल्पी और वास्तुविद् अपने-अपने कार्यों मे लग थे।

मदिर क पास क भू-खड पर तीन सग-तराश अपना कार्य कर रहे थे। तीनो क पास एक सा ही प्रस्तर खड था। वे छैनी और हथौडी लिए एक सी मूर्ति का तक्षण कर रह थे। एक शिल्पी की मुख मुद्रा प्रफुल्ल थी उसकी आखो मे चमक थी उत्साह और उल्लास का प्रभा मडल उसको घेरे था। दूसरा शिल्पी थका-हारा सा वही काम कर रहा था। तीसरा एसा लग रहा था जेसे टूटा हुआ, मरा हुआ मिट्टी का ढूह हो।

एक दर्शक तीनो को तीन स्थिति म दखकर कुछ समझ नहीं पाया। उसने पहले से पूछा 'आप क्या कर रहे हैं?' पहला शिल्पी 'बधु! एक भव्य मदिर बन रहा है यह मूर्ति उस मदिर म विजडित होगी।' लग रहा था जैसे वह छोटा-सा कार्य नहीं कर रहा हे एक विशाल मदिर के निर्माण के स्वप्न को साकार कर रहा हे उसके भाव उसके हाथ और उसकी छैनी तीनो एकाकार हैं।

दूसर ने उत्तर दिया 'मै यह मूर्ति बना रहा हू, यह कहा लगेगी, कहा नहीं लगगी - मैं नहीं जानता मुझ कोई मतलब नहीं।' इस भावना न लगता ह उसे आदमी नहीं रहने दिया। वह एक मशीन, एक यत्र बन काम कर रहा है। आनदविहीन यह कार्य उसकी थकान के मूल मे है।

तीसरे ने कहा 'मैं पत्थर नहीं काटता समय काटता हू, कब पाच बजे और यहा से भाग खडा होऊँ।' दर्शक समझ गया - शिल्पी के टूटने का रहस्य।

आइए - हम अपने से पूछे कार्य हम क्या उल्लास देता है? क्या टूटन देता है? स्मरण रहे उत्साह-उल्लास म ही जीवन की सार्थकता है।

अरस्तू जिन्दा तो सिकन्दर हजारो

उफनता हुआ नद मार्ग म था। तट पर महान ग्रीक दार्शनिक अरस्तू और भावी विश्वविजय के स्वप्न सजाए सिकदर खडा था। नद को तेर कर पार जाना था - अपनी अगली यात्रा पर।

दोना के मन मे नद के उफान म मृत्यु का अदेशा था - अत गुरु चाहता था - में आगे तर कर थाह लू - जिससे मेरा प्रिय शिष्य रक्षित रह। पर, सिकदर एक सच्चे शिष्य की तरह अडे खडा था और वह खतरे का वरण करने का तयार था और चाहता था - गुरु तभी नद म पेर रखे, जब सुरक्षा का पूरा विश्वास हो।

दाना म प्रेम पूर्ण तकरार थोडी देर होती रही। अत मे सिकदर के आग्रह के सामन अरस्तू को हार माननी पडी। सिकदर आग तरता गया और गुरु का पीछ-पीछे निरापद प्रवाह से तराता सकुशल नद के दूसरी आर ले आया।

अरस्तू - 'प्रिय सिकदर तुम युवक हा अभी तुम्हारे सामने भावी जीवन की, एक शासक की रगीन सभावनाए ह फिर भी तुमन अपने को खतरे म क्या डाला? मेरा क्या - में वृद्ध ।'

सिकदर ने पूरी बात को कहने नहीं दिया ओर एक एसा उत्तर दिया जो इतिहास मे अपने ढग का अनूठा ह।

'गुरुदव। अरस्तू यदि जिदा रहता हे तो उनक द्वारा हजारो सिकदर बनाए जा सकते हें पर कोई भी सिकदर एक भी अरस्तू नहीं बना सकता।'

केवल कोमल बचता है

चीन के आदर्श शासक व दार्शनिक कन्फ्यूशियस बूढे हो गए थे। वे मृत्युशैया पर थे। उनके छात्र उनका घेरे थे ओर उनकी सेवा-शुश्रूषा म दत्तचित्त थ।

कन्फ्यूशियस ने मद वाणी म कहा 'मेरे मुह म देखो, काई दात बचा हे क्या?' शिष्य इस प्रश्न का रहस्य समझ नहीं पाए। कन्फ्यूशियस ने अपना मुह फाडा और इशारा किया। एक बुद्धिमान शिष्य ने मुह के भीतर अगुली फेरकर कहा गुरदेव। एक भी दात नहीं हे।' 'ओर जीभ?' शिष्य ने कहा 'हा-हा गुरुदेव जीभ तो ज्या-की-त्या है।'

कन्फ्यूशियस ने सबसे निराशा के स्वर मे पूछा 'यह केसे हुआ? जन्म के साथ आने वाली जीभ बच गई ओर बाद म आने वाले दात सन चले गए।' सभी इस प्रश्न पर मौन साधे खडे रहे।

गुर ने अपना अतिम सारगर्भित उपदेश दिया 'देखो-जो कठोर हैं क्रूर हैं उनका नाश हो जाता है। पर जो कामल हैं, मुलायम हैं - व ही बचते हैं।'

इकली लकडी नाय जलेगी

सीता का हरण हो चुका था। पचवटी सूनी थी। भगवान राम लक्ष्मण पर क्रोधाविष्ट थे, 'लक्ष्मण! तुमने आज्ञा की अवमानना की है जानते हो इसका दड!' 'तात! में क्षत्रिय हू, दड को जानता हू, दड मुझे सहर्ष स्वीकार्य है। हम रघुवशी करुणा की याचना नहीं करते, दड दड नहीं – करुणा तो यातना है। पर प्रभो! छोटा भाई होने के कारण एक कर्त्तव्य शेष हे। आपके लिए आज का भोजन बना दू, बस फिर मृत्यु दड के लिए में तेयार हू।' राम जरा क्षुब्ध हो कहने लगे, 'अच्छा! अच्छा!! जल्दी भोजन बना।'

लक्ष्मण ने पात्र चूल्हे पर चढाया। खिचडी बनाने की तैयारी शुरू कर दी। नीचे एक लकडी जलाई, उसको बुझते देख दूसरी जलाई फिर तीसरी जलाई – पर दो लकडी एक साथ तिरछी रखकर नहीं जलाई। पात्र के नीचे आच नहीं, थोडा थोड़ा धुआ उठता और थोडी-थोडी अग्नि रेखा से उठती। समय लगने लगा, पानी गर्म तक नहीं हुआ।

भगवान राम इस विलब से आकुल व्याकुल अपने कठोर कर्त्तव्य के लिए अपने को तैयार करते हुए रोष भरे स्वर मे कहने लगे, 'क्या हुआ लक्ष्मण! बहुत देर कर रहे हो।' लक्ष्मण आसुओ से भींगा चेहरा लिए कहने लगे –

'इकली लकडी नाय जलेजी,
कोई नाय ऊजाला होय।
लिछमण भाई ने मारताजी
राम अकेला होय॥'

इन सच्चाई भर करुण स्वरो मे राम को सत्य के दर्शन हुए। कुटिया के भीतर आकर लक्ष्मण को उठाकर प्रगाढ आलिगन के पाश मे बाध लिया। दोना के बहे आसुओ के भीतर से रावण वध के लिए एक सकल्प का तेज चमक रहा था।

केवल कोमल बचता है

चीन के आदर्श शासक व दार्शनिक कफ्यूशियस बूढे हो गए थे। वे मृत्युशैया पर थे। उनके छात्र उनको घेरे थे और उनकी सेवा-शुश्रूषा मे दत्तचित्त थे।

कफ्यूशियस ने मद वाणी म कहा, 'मेरे मुह म देखो, कोई दात बचा है क्या?' शिष्य इस प्रश्न का रहस्य समझ नही पाए। कफ्यूशियस ने अपना मुह फाडा और इशारा किया। एक बुद्धिमान शिष्य ने मुह के भीतर अगुली फेरकर कहा गुरुदेव! एक भी दात नहीं है।' 'और जीभ?' शिष्य ने कहा 'हा-हा गुरुदेव जीभ तो ज्यो-की-त्या है।'

कफ्यूशियस ने सबसे निराशा के स्वर मे पूछा 'यह कैसे हुआ? जन्म के साथ आने वाली जीभ बच गई और बाद मे आने वाले दात सब चले गए।' सभी इस प्रश्न पर मौन साधे खडे रहे।

गुरु ने अपना अतिम सारगर्भित उपदेश दिया 'देखो-जो कठोर हैं क्रूर हैं, उनका नाश हो जाता है। पर जो कोमल है मुलायम हैं - वे ही बचते है।'

इकली लकडी नाय जलेगी

सीता का हरण हो चुका था। पचवटी सूनी थी। भगवान राम लक्ष्मण पर क्रोधाविष्ट थे 'लक्ष्मण! तुमने आज्ञा की अवमानना की है, जानते हो इसका दड!' 'तात! मैं क्षत्रिय हू, दड को जानता हू, दड मुझे सहर्ष स्वीकार्य है। हम रघुवशी करुणा की याचना नहीं करते, दड दड नहीं - करुणा तो यातना ह। पर प्रभो! छोटा भाई होने के कारण एक कर्त्तव्य शेष ह। आपक लिए आज का भोजन बना दू, बस फिर मृत्यु दड के लिए मैं तैयार हू।' राम जरा क्षुब्ध हो कहने लगे, 'अच्छा! अच्छा!! जल्दी भोजन बना।'

लक्ष्मण ने पात्र चूल्हे पर चढाया। खिचडी बनाने की तैयारी शुरू कर दी। नीचे एक लकडी जलाई, उसको बुझते देख दूसरी जलाई, फिर तीसरी जलाई - पर दो लकडी एक साथ तिरछी रखकर नहीं जलाई। पात्र के नीचे आच नहीं, थोडा थोडा धुआ उठता और थोडी-थोडी अग्नि रेखा से उठती। समय लगने लगा, पानी गर्म तक नहीं हुआ।

भगवान राम इस विलब से आकुल व्याकुल अपने कठोर कर्त्तव्य के लिए अपने को तैयार करते हुए रोष भर स्वर मे कहने लगे, 'क्या हुआ लक्ष्मण! बहुत देर कर रहे हो।' लक्ष्मण आसुओ से भीगा चेहरा लिए कहने लगे -

'इकली लकडी नाय जलेजी,
कोई नाय ऊजाला होय।
लिछमण भाई ने मारताजी
राम अकेला होय॥'

इन सच्चाई भरे करुण स्वरो म राम को सत्य के दर्शन हुए। कुटिया के भीतर आकर लक्ष्मण को उठाकर प्रगाढ आलिगन के पाश म बाध लिया। दोना के बहे आसुआ के भीतर से रावण वध के लिए एक सकल्प का तेज चमक रहा था।

मेरे पास — जनपदो की जनता का बल

मगध जनपद मे भयकर अकाल था। लाखो लोग मौत के कगार पर थे। मगध नरेश किकर्त्तव्यविमूढ से थे। उन्होने जनपद के श्रेष्ठी वर्ग को, राज्याधिकारियो और सामत कुमारो को विशेष रूप से आमत्रित किया। परिषद् के सम्मुख अकाल की विभीषिका मुह बाए खडी थी।

मगध नरेश ने कहा, 'मेरे पास जितने साधन हैं उनसे मैं दो महीने तक कठिनाई से प्रजा को अन्न दे सकता हू।' सभी निराश थे अपने बल को माप-तौल रहे थे। कोई पद्रह दिन कोई दस दिन कोई पाच दिन कोई दो-एक दिन प्रजा-पालन की अपनी-अपनी सामर्थ्य को तौल कर मौन हो गूगे बने बेठे थे।

इतने मे एक भिक्षुणी के तेजस्वी स्वरो मे आशा का प्रकाश सहसा चमक उठा। उसने विश्वास के अटल स्वर मे घोषणा की 'उपस्थित बधुओ! जाओ मगध मे घोषणा कर दो एक भिक्षुणी समस्त मगध को भुखमरी के आसन्न खतरे से बचाने आ गई है। सब निश्चित रहे। अन्न के अभाव मे कोई भी मृत्यु का ग्रास नहीं बनेगा।'

सम्राट् ने अविश्वास के शब्दो मे कहा 'भिक्षुणी! तुम किस आधार पर इतनी बडी घोषणा कर रही हो?'

भिक्षुणी - 'राजन्! आप सबके पास केवल अपना बल है केवल अपना अहम् केद्रित बल-सबल है मेरे पास अपना कोई बल नहीं यही मेरा बल है सबल है शक्ति का अजस्र स्रोत है। आप सब का — आपका श्रेष्ठी वर्ग का उपस्थित अनुपस्थित का सभी का और पास के जनपदो की जनता का बल मेरा बल है।'

आत्मविश्वास की इस सघ वाणी ने सभी के हारे हुए हृदयो मे विजयश्री की ज्योति जगमगा दी।

आदमी जुडा तो विश्व जुडा

दसवीं कक्षा का कमरा था। यह भूगोल पढाने का समय था। अध्यापक ने ससार के मजबूत गत्ते से बने मानचित्र के टेढे-मेढे टुकडे मेज पर बिखेर दिए थे। सब लडको से कहा, 'इन टुकडा से ससार बनाआ।' लडके बहुत हाशियार थे। टुकडो का जोडने मे लग गए। कभी हिदुस्तान बने तो चीन बिखर जाए, पाकिस्तान लगडा रह जाए। कभी यूरोप बने तो अफ्रीका ठीक न बने। अमेरिका को पूरा बनाने मे जुटे तो बने बनाए देश गडबडा जाए।

एक बुद्धिमान लडका अलग खडा विचार कर रहा था कि आज इस परीक्षा के पीछे कोई रहस्य छिपा है। हो सकता है इन टुकडो को उलट कर देखन स काई गुर हाथ लग जाए, रहस्य की कुजी मिल जाए। वह अकेला आग बढा ओर साथिया से बोला, 'आप लोग यह श्रम बद करे, मुझे पाच-दस मिनट का समय द।' सब लडके अलग खडे हा गए। उस लडके ने उन टुकडा को उलट कर रखा, वह यह जानकर स्तब्ध रह गया कि सब के पीछे पूरे मनुष्य के अग-प्रत्यग के चिह्न लगे है। लगता हे पूरे इसान को तोडकर रख दिया हे। उसने धीरज से जोडना शुरू किया यह मस्तक यह गला, यह छाती ये हाथ, ये उगलिया - शरीर के अग जुडते गए। एक पूरे स्वस्थ मनुष्य का शानदार स्वरूप खडा हो गया। उसने कहा, इसे उलट दो अब सारा ससार बना हुआ तैयार है।

आज हम समाज बनाने मे लगे हैं। प्रात, राष्ट्र या विश्व को जोडने मे लगे हैं। आदमी टूट रहा है। यदि आदमी बन जाए तो समाज स्वय बन जाएगा, ससार बन जाएगा।

केवल देखते रहो - मन को।

'प्रिय आनद! जाआ पास ही बहते नाले से पानी ले आयो। प्यास लगी है।' आनद शास्ता की आज्ञा पाकर जलपात्र लेकर चल पडा। भगवान तथागत वहीं वृक्ष की छाया म विश्राम करने ध्यानस्थ हो गए। आनद लौट आया और कहने लगा 'शास्ता! पानी मटमैला है क्याकि अभी उधर से नगर श्रेष्ठी के शकट निकले थे।' बुद्ध ने कहा, 'वापस जाओ। जल-धारा क तट पर बैठ जाना कुछ न करना बैठे रहना द्रष्टा बनकर। फिर क्या घटता है देखना।' आनद चला गया। नाले के पास बैठ गया। धीरे-धीरे पानी की हलचल शात हो गई मिट्टी नीचे बैठने लगी और पानी हीरे की तरह पारदर्शी हो चमकने लगा। आनद जलपात्र भर कर लौट आया।

बुद्ध ने जल पीकर कहा 'तुम समझे कुछ।' आनद ने कहा, 'समझने को वहा क्या था।' 'तो समझो, देखो यह मन इसी नाले की तरह अशात हा जाता है, सैकडा रूपा म आकुल-व्याकुल! उसे दबाओ मत डाटा-फटकरो मत। मत कहो यह चचल है, प्रमाथी है बलवान है, जिद्दी है दुष्ट है, चोर है। केवल अपने को द्रष्टा बनाआ प्यार से दखा-केवल देखते रहो - मन को। वह इसी नाले की तरह शात-प्रशात गभीर और निर्मल हा जाएगा।' आनद वाणी की इस निर्मल धारा मे निमज्जित प्रफुल्ल हो विकसित हा रहा था।

अतिम पाठ शेष

गुरुकुल म आज दीक्षात समाराह है। एक राजकुमार अपना अध्ययन समाप्त कर राजधानी लौटने वाला ह। समाट् व सामाज्ञी क आगमन क कारण चतुर्दिक् विशेष उत्साह और सभ्रम का वातावरण ह।

यथा समय कुलपति पधारते हैं। राजकुमार आगे बढकर प्रणाम करता है और उनके आसन ग्रहण करन पर उनक चरण-कमल से खडाऊ उतारता है। राजकुमार की यह गुरुभक्ति और विनम्रता सभी का माह लती है। कुलपति ने समुपस्थित लागा का सबाधित करत हुए कहा 'राजकुमार की प्रतिभा श्रमनिष्ठा व अनुशासनबद्धता से हमारा गुरुकुल गौरव का अनुभव करता ह। राजकुमार का भविष्य उज्ज्वल ह। अब केवल अतिम पाठ शेष है उसे पढाकर मैं राजकुमार का सहर्ष विदा करूगा।' सब चकित थे कि यह अतिम पाठ आखिर कैसा है।

कुलपति ने राजकुमार का बुलाया और सबके देखते एक बत उसकी पीठ पर सडाक स दे मारी। सम्राट्, साम्राज्ञी राजकुमार और सभी उपस्थित समूह इस दृश्य को देखकर स्तब्ध थ, क्षुब्ध भी।

कुलपति ने कहा 'आप सब मर इस कार्य को एक विक्षिप्त का कार्य समझ रहे हागे। पर, आज का यह कठार कर्त्तव्य मेरे लिए अनिवार्य था। जब सम्राट् को सौ वर्ष पूरे हागे तो यह राजकुमार सम्राट् के सिहासन पर आसीन हागा। हाथ मे दड हागा। अपराधिया के अपराध के कारण यह कहेगा - 'इसे सौ पाच सौ या हजार बत मारो। उस समय दड की आज्ञा देते समय आज का यह अनुभव दड का क्रूर न बनने देगा एक बत की यह पीडा जीवन भर के लिए एक महगा अनुभव बनेगी। फिर दड यथापराध दड हाने से धर्म बन जाएगा।'

कुलपति के इस कथन को सुनकर सम्राट् आग बढे। कुलपति के चरणा म झुके। राजकुमार के मुख पर स्मिति थी और कुलपति आशिष देते हुए प्रेमाश्रुआ से भीग रहे थे।

महत्त्वाकाक्षा - वरदान भी, अभिशाप भी।

एक दवी ने दूसरी देवी से कहा 'बहिन। म एक उलझन म हू। सोच नहीं पाती क्या करू?' दूसरी देवी ने कहा - 'कहो सभवत मैं तुम्हारी परेशानी दूर कर सकू।' पहली दवी - 'एक व्यक्ति ह जा मुझ दिन भर याद करता ह में उसके साथ कैसा बर्ताव करू?' दूसरी देवी - 'इसम क्या उलझन? उसे वरदान दे डालो'। 'पर वह मुझे रात भर गालिया देता है।' 'ता उस अभिशाप द दो।' 'पर मेरी प्यारी बहिन आप जरा सोचिए मेरी उलझन को। म जब वरदान का विचार करती हू ता मुझ इसकी गलिया याद आती ह जब अभिशाप के लिए मरी त्यारी चढती है तो इसकी दिन भर की भक्ति भावना याद आती है आर इस पर करुणा उमड पडती ह। न में शाप द पाती हू और न वरदान।' दूसरी देवी न इस असमजस का अनुभव किया और किसी दिन इस से त्राण दिलाने का वचन दिया।

दूसरी देवी को एक दिन अचानक इस समस्या का हल सूझ गया। वह दोडी-दौडी आई और पहली देवी स कहने लगी 'बहिन। तुम्हारी इस उलझन की दवा मेरे हाथ लग गई है। तू इसे महत्त्वाकाक्षी बना दे। महत्त्वाकाक्षा - जीवन का वरदान भी ह और अभिशाप भी है।'

आज भी मानवजाति इसी महत्त्वाकाक्षा के द्विविध रूपवाली है। इसकी काली छाया स ग्रस्त आर उजली आभा से दीप्त। जो मनुष्य अपनी शक्ति को, आकात को समझ अपने आत्मबल और सकल्प का जाग्रत कर महत्त्वाकाक्षी बनता है उसके लिए यह वरदान उसका अभिषेक करता है। पर जो कोरा महत्त्वाकाक्षी ह न श्रम करता है न परिस्थिति का चितन करता है और न परिवेश को समझता है - यह महत्त्वाकाक्षा - उसको ईर्ष्यालु, झगडालू, उदास और हताश बना कर उसे तोड देती है।

चितन मनन

अबपाली - रथ को तेज हाको

'भते! भिक्षु सघ के साथ भगवान् कल का भाजन मर यहा स्वीकार कर।' गणिका अबपाली न श्रद्धा परिप्लुत वाणी स निवेदन किया। भगवान बुद्ध न स्वीकार कर लिया।

अबपाली के जीवन का यह एक स्वर्णिम अवसर था जीवन का एक सुनहरा माड। अबपाली का रूपातरण हा गया। वह उमग स गौरव से महत्ता से भर गई। जसे अब वह अकिचना नहीं एक कीर्तिमयी गाथा है जीवन की सार्थकता है।

अबपाली ने सारथी से कहा 'रथ का तेज हाको अश्वा को वेग से दौडाओ किसी के रथ का आगे न निकलने दो।'

इधर लिच्छवी तरुण दल नीले-पीले-श्वेत विविध वस्त्रा से सज्जित तेज याना पर चढे आ रहे थे। अबपाली ने तरुण लिच्छवियो के धुरा से धुरा चक्का से चक्का जुए से जुआ टकराया। लिच्छविया ने ताडना के तीखे स्वरा म कहा 'अबपाली! क्या हमारे धुरा से धुरा टकराने का दुस्साहस कर रही ह?'

'आर्य पुत्रा! क्याकि मने भिक्षु सघ के साथ भगवान् का कल भोजन के लिए आमन्त्रित किया हे।'

'अबपाली! विपुल स्वर्ण लेकर इस भात (भोजन) का सुअवसर हमे दे दा।'

अबपाली ने उपेक्षा क साथ गर्वीली वाणी मे उत्तर दिया 'आर्यपुत्रा! यदि वैशाली जनपद भी दा तो भी इस भात को न दूगी।'

लिच्छवी तरुण बुद्ध से निवेदन करने गए। बुद्ध ने कहा 'लिच्छवियो! कल तो स्वीकार कर लिया हे - अबपाली गणिका का भोजन।'

बुद्ध का यह कारुण्य और अबपाली का यह आत्म-तेज हमारे लिए वद्य भी है और उससे अधिक प्रेरक।

हसा थे वे उड गए

एक कथा वाचक था। उसकी भागवत कथा सुनने वाले कम हो गए। उसकी स्त्री ने कहा 'कही जाकर कथा सुनाओ। यहा ता नास्तिका का जार ह।' वह अपनी पाथी माथे पर रख चल पडा।

रास्ते म बीहड वन मिला। चारा आर जगल म मगल। सब जगह प्रेम और भाईचारा। मोर क पास साप सरक रहा है ओर हरिण मजे मे चौकडी भर रहा है। उसने सियार से पूछा 'भाई सियार। आजकल आपका तो यह जगल बदल सा गया है। चारा आर सुख-शाति। क्या बात हे?' सियार 'तुम्ह मालूम नहीं पशु-पक्षिया म सधि हो गई हे। सिह राजा, पक्षिया का प्रतिनिधि हस वह बना ह - मत्री। सब ठीक ठाक। न लडाई, न बेर विरोध। आदमी ने कहा 'मेरी कथा करा दो तो बड़ी कृपा हा।' सियार को दया आ गई उसने हस से कहा हस ने सिह को राजी किया और कथा शुरू हा गई।

पशु-पक्षी सब शाति से बेठ कथा सुनते। सिह का यजमान बनाकर कथा होती। कथा समाप्ति पर कथावाचक ने गुफा क सामने बिखरे सोने के गहने लेने की इच्छा की। य गहने सिह द्वारा मारे गए राहगीरा के थे। सिह ने कहा 'ले जा इस, य हमारे लिए कूडा करकट हे।'

वह घर लोट आया। उसने सिह के यजमानी की बात कही। सभी ने उसे पागल समझा। कुछ दिना म उसने खा-पीकर सारा धन उडा दिया। वह पाथी माथे पर रख चल पडा - अपने पुरान यजमान सिह को कथा सुनाने। इस बार जगल का देखकर वह घबडाया चारा ओर भय ओर आतक। वही सियार मिला। सियार ने कहा 'अर! कहा आ गया। यहा सब बदल गया हे। हस अब मत्री नही कावा मत्री हे। कथा का नाम लगा ता सिह फाडकर खा जाएगा।

हसा थे वे उड गए, काग भया परधान।
जा बामण घर आपणे, सिह किण'रा जजमान॥

यह सुनते ही वह कथावाचक डर क मारे माथे पर पाथी पत्रा लादे अपने गाव की ओर भाग खडा हुआ। उसके काना मे गृज रहा था - 'हसा थे वे उड गए।'

सूरज की अभिनन्दन सभा अधूरी

आज धरती पर अभूतपूर्व उल्लास था। गधर्व किनर भूत-प्रत, ऋषि-मुनि, पशु-पक्षी लता-वृक्ष, नदी-निर्झर सभी चर-अचर एकत्र थे। सभी सूय भगवान के अभिनदन समारोह मे सज-धज कर आए थे।

जब अभिनदन करने व ग्रथ भेट करने की धरती निवासियो न सूर्य के सम्मुख प्रार्थना की ता वे चकित हो गए। कहने लगे - 'मेरा अभिनदन केसा? मैं कुछ करता नहीं। मैं तो कवल हू, केवल 'हू' मात्र। एक जलता धधकता गाला।' पर सभी के आग्रह के सामन वे झुक गए। इतना ही कहा - 'जैसी सबकी इच्छा।'

विशाल मच बनाया गया। सूर्य नारायण सोम्य स्वरूप धारण कर मच पर पधारे। चारा ओर जय-जयकार का तुमुल नाद। जटाधारी ऋषि ने वदना की और यश-स्तवन प्रारभ किया। 'हे सवितादेव। हे भुवन-भास्कर। आप अधकार को नष्ट करते हैं। यह सुनत ही सूर्य ने कहा 'जरा रुकिए। मन अभी तक अधेरे का देखा तक नहीं फिर उसे नष्ट करने का प्रसग कसा। मुझे अधकार का लाकर दिखलाओ तो सही।' पर, सूर्य क सामन अधेरा कैसे लाया जा सकता है।

ऋषि रुके नहीं कहने लगे - भगवान्। आप नहीं जानते अपनी महिमा को, आपकी कृपा से बादल बनते हैं, जल बरसता है, जिससे धरती हरी-भरी होती ह। सूरज ने टोक कर कहा, 'मरी समझ म कुछ नहीं आ रहा ह। मैंने पानी का छुआ तक नहीं। मेरा समय क्या बबाद करत हो?' यह कह कर व बीच म ही उठ गए ओर गगन-मडल मध्य जा विराजे। यह अभिनदन सभा अधूरी रह गई। आज तक अधूरी।

हसा थे वे उड गए

एक कथा वाचक था। उसकी भागवत कथा सुनने वाले कम हो गए। उसकी स्त्री ने कहा 'कहीं जाकर कथा सुनाओ। यहा तो नास्तिका का जोर हे।' वह अपनी पाथी माथे पर रख चल पडा।

रास्ते म बीहड वन मिला। चारो आर जगल मे मगल। सब जगह प्रेम आर भाईचारा। मार के पास साप सरक रहा ह और हरिण मजे म चौकडी भर रहा हे। उसने सियार से पूछा 'भाई सियार। आजकल आपका तो यह जगल बदल सा गया हे। चारो आर सुख-शाति। क्या बात हे?' सियार, 'तुम्हे मालूम नहीं पशु-पक्षिया मे सधि हो गई हे। सिह राजा पक्षिया का प्रतिनिधि हस वह बना ह - मत्री। सब ठीक ठाक। न लडाई, न बेर विरोध। आदमी ने कहा, 'मेरी कथा करा दो तो बडी कृपा हा।' सियार का दया आ गई उसन हस से कहा हस ने सिह को राजी किया आर कथा शुरू हा गई।

पशु-पक्षी सब शाति से बठ कथा सुनते। सिह को यजमान बनाकर कथा होती। कथा समाप्ति पर कथावाचक ने गुफा के सामने बिखरे साने के गहने लेने की इच्छा की। ये गहने सिह द्वारा मारे गए राहगीरा के थे। सिह ने कहा 'ले जा इसे य हमारे लिए कूडा करकट है।'

वह घर लोट आया। उसने सिह के यजमानी की बात कही। सभी ने उसे पागल समझा। कुछ दिना म उसन खा-पीकर सारा धन उडा दिया। वह पाथी माथे पर रख चल पडा - अपने पुराने यजमान सिह को कथा सुनाने। इस बार जगल का देखकर वह घबडाया चारा ओर भय और आतक। वही सियार मिला। सियार ने कहा, 'अर! कहा आ गया। यहा सब बदल गया है। हस अब मत्री नहीं कौवा मत्री है। कथा का नाम लगा ता सिह फाडकर खा जाएगा।

हसा थे व उड गए, काग भया परधान।
जा वामण घर आपणे, सिह किण'रा जजमान॥

यह सुनते ही वह कथावाचक डर के मारे माथे पर पोथी पत्रा लाद अपने गाव की आर भाग खडा हुआ। उसक काना म गूज रहा था - 'हसा थे व उड गए।'

सूरज की अभिनन्दन सभा अधूरी

आज धरती पर अभूतपूर्व उल्लास था। [illegible] ऋषि मुनि पशु-पक्षी लता वृक्ष नदी-निर्झर [illegible] सभी सूर्य भगवान के अभिनदन समारोह में [illegible]

जब अभिनदन करने व ग्रथ भेंट करने [illegible] के सम्मुख प्रार्थना की तो वे चकित हो गए। [illegible] 'कैसा? मैं कुछ करता नहीं। मैं तो केवल हूँ [illegible] धधकता गोला।' पर सभी के आग्रह [illegible] – 'जैसी सबकी इच्छा।'

विशाल मच बनाया गया। [illegible] मच पर पधारे। चारो ओर [illegible] ने वदना की और यश स्तवन प्रारभ किया। 'हे [illegible] भास्कर। आप अधकार का नाश करते हैं। [illegible] रुकिए। मैने अभी तक अधेरे को देखा तक [illegible] प्रसग कैसा। मुझ अधकार का [illegible] सामने अधेरा कैसे लाया जा सकता है।

ऋषि रुके नहीं [illegible] महिमा को आपका [illegible] हरी भरी होती है। [illegible] रहा है। मैंने [illegible] यह कह कर वे [illegible] यह अभिनदन सभा [illegible]

स
गन्
रते
ावड
। आर
। बुद्ध
ो आर
ते रहे।
ने लगा,
सी आर
जस ओर
और वह
यह मौन
णा से भरे
से भरा है।
ार म आते
लाग होते
। पाते। पर
ते हैं, हरेक
परिनिर्वाण

अज्ञान का ज्ञान — सच्चा ज्ञान

डेल्फी के मदिर से यह घोषणा हुई कि ससार का सबसे बुद्धिमान व्यक्ति सुकरात है। सुकरात को जब यह सूचना मिली तो उसने कहा 'यह केसे हा सकता है! हमारा यूनान एक से बढकर एक बुद्धिमाना से भरा है।' वह विनम्र हाकर अपने को भीतर ही भीतर टटालने लगा और इस कथन के मिथ्यात्व का अनुभव करन लगा।

फिर भी उसके मन म आया कि यूनान की महान प्रतिभाआ से मिला जाए और इस कथन का अनुभव की तुला पर तोला जाए।

सुकरात निकल पडा। कभी कहीं कभी कहीं यशस्वी व्यक्तिया क सपर्क म आया। उनसे जिज्ञासा की वार्तालाप किया और उस प्रकाश मे अपनी बेरहमी से जाच आरभ की। सुकरात को लगा प्राय सभी गर्वीले हैं अपन ज्ञान को ये जानते हैं पर अपन अज्ञान स परिचित नहीं हैं।

सुकरात अपने स्थान पर लौट आया और उसने अकप वाणी से घोषणा की 'सचमुच मैं सुकरात दुनिया का सबस बडा बुद्धिमान हूँ, क्याकि मैं अपन ज्ञान को जानता हू और अपने अज्ञान का भी जानता हू। अज्ञान का ज्ञान यह दुनिया का सबसे बडा ज्ञान है।'

थोडा-सा जानो गर्व हागा। और थाडा-सा जाना विनमता आएगी। और थोडा-सा जानो, आश्चर्य हागा। आर थाडा-सा जाना - मन कहेगा, 'ज्ञान क महासागर क तट पर मैं शिशु सा खडा शख घाघे नटारता रहा हू, मोती तो अभी किसी गाताखार की प्रतीक्षा में हैं।'

एक मोन प्रवचन

सघन आम्र निकुज था। चीवरधारी भिक्षुक बठे हुए थे। नगर स आए श्रद्धालु श्राताआ की भीड थी। इतने मे कुटीर से निकल कर भगवान् बुद्ध बाहर आए आर ध्यानमग्न अर्धनिमीलित नेत्रा से पथ-सधान करते धीर पद सचार करते सभास्थल की ओर बढने लगे। सभी पलक पावडे बिछाए थे।

बुद्ध आसन पर बिराजे। अचानक उन्हाने ऊपर की ओर देखा और देखा कि एक पक्षी मौन शात बना एक वृक्ष की शाखा पर बठा है। बुद्ध उसकी आर देखते रहे, देखते रहे, देखते रहे-निर्निमेप। सभी उसकी ओर देखने लगे। थोडी देर बाद उस पक्षी ने पख फडफडाए, बुद्ध देखते रहे। फिर वह पक्षी कलरव कर उठा कुछ सुरीले स्वरो मे मस्ती से गाने लगा नाचन लगा। बुद्ध के अधरा पर मुस्कान नाच उठी और वे उसी आर ताकते रह। श्राता कभी बुद्ध की आर देखते और फिर बुद्ध जिस आर देखते उसी ओर देखने लगते। तदनतर पक्षी ने पख फैलाए और वह उडान भरता नीले गगन मे खो गया। बुद्ध उठ खडे हुए आर 'यह मौन दिव्य प्रवचन समाप्त।' कहकर कुटीर मे लौट आए।

सभा स्तब्ध चित्रलिखित-सी थी।

क्या था यह प्रवचन। कोन जाने - कौन बताए। करुणा से भरे सारिपुत्र ने कहा 'आज का यह मौन प्रवचन गभीर है अर्थों से भरा है। पर यथामति मैं जा समझा हू - उसे सुनो। लाखा व्यक्ति ससार मे आते हैं और बैठे रहते हैं - जड बने आर मर जाते हैं। थोडे से लोग होते हैं जो फडफडाते हैं, कुछ करने को अकुलाते हैं पर कर नहीं पाते। पर कुछ और लाग हैं - जो जीवन को सगीत बनाते हैं, नृत्य बनाते हैं हरेक स्थिति मे नाचते गाते मस्त रहते हैं और वे ही लोग अनत मे परिनिर्वाण म खो जाते हैं। यही जीवन दर्शन इस मौन मे मुखर है।'

श्रोता आज के इस दृश्य का कभी भूल नहीं पाए।

दीर्घ जीवन का रहस्य

एक दिन देवर्षि नारद नें पूछा 'हे पक्षिराज। हे पन्नगारि। हे वैनतेय। में आप से एक कुतूहल भरा प्रश्न करना चाहता हू। यदि गापनीय न हा तो उत्तर द।' गरड मुस्कराने लगे, 'आप से गापनीय? काई रख भी सकता हे क्या। आप की अवाध गति कुछ छिपाए भी तो आप सब उगलवा लेते हैं।' नारद 'आपके दीर्घजीवन का रहस्य क्या है?' गरुड 'देवर्षि। आपका प्रश्न, कुतूहल भरा नहीं, विश्व मगल के लिए हैं। मैं जो कहूगा, वह सब जगह प्रचारित हागा आप के अलावा ऐसा कौन है, जा जन-जन तक बाते पहुचा दे।' नारद ने खुश हाकर वीणा झनझनाई 'हरे राम। हरे राम।'

गरड ने कहा 'दीर्घ जीवन के दो प्रमुख बिंदु हैं। एक है - में कल की चिता नहीं करता। जा कल गया वह मर गया न मैं उसके लिए पछताता हू, न गर्व करता हू। सुकृत दुष्कृत दोना से मुक्त दोना से उदासीन। और जो आने वाला कल है जो अभी पैदा ही नहीं हुआ, उसके लिए न आशका, न भय न निरे सपने। में आज पर अपने को उडेल देता हू, गति, मति - सब उसी पर।'

नारद सुन रहे थे भीतर जेसे लिख रहे हैं। गरड ने आगे कहा 'दूसरा बिंदु है - में पुराने को पुराना नहीं पडने देता उसे नित नया कर, अपनी उमगो के रगो से रग कर भोगता हू - रसपूर्ण सोचता हू, यह सूरज यह बदलते रगो वाला आसमान ये झिलमिलाते सितारे, ये झूमते वृक्ष खिलते सुमन-यह नया आने वाला क्षण - कितने नए हे, मे अके इस परिवेश वाले दिक् व काल कहीं न अभिशाप का वरदान मानने की सदेश को के लिए।

चिंतन मनन

एक शब्द घाव एक शब्द दवाई

एक जागीरदार ने एक गढ का निर्माण करवाया। गढ विशाल सुदृढ, दुर्गम एव अभेद्य। जागीरदार के कुशल शिल्पी ने गढ को ऐसा आश्चर्यजनक बनाया था कि बाहर से प्रवेश द्वार का और भीतर से निकास द्वार का खोजने पर भी पता नही चलता था।

एक दिन जागीरदार ने गाव के चौधरी को बुलाकर भीतर किले मे घुमाया। देखकर चौधरी कहने लगा 'ठाकुर साहब। आप मर जावेगे तो आपको किधर से निकालगे कहीं दरवाजा तो नहीं दीखता है।' जागीरदार 'मूर्ख। बोलना भी नही जानता। अशुभ बात निकालता है।' सिपाही को बुलाकर उसे कैद मे डलवा दिया। दूसरे दिन उसके बडे लडके को बुलाकर ठाकुर ने उसके बाप की बात सुनाई। लडका कहने लगा - 'ठाकुर साहब। है तो वह मेरा बाप पर है दुश्मन। उसको क्या पडी थी यह कहने की। लोग आपको क्या निकालगे ऊपर से नीचे पटकगे। मेरे बाप को बोलना नही आता उसके मारे हम परेशान हैं।' ठाकुर ने देखा यह तो बाप का भी बाप निकला उसे भी जेल मे डाला।

फिर छोटा भाई आया और सारी बात सुनकर अपने बाप और भाई पर बिगडा और कहने लगा, 'अन्नदाता। ये दोनो मूर्ख हैं, बोलना भी नहीं आता। मै कहता हू, आप को क्या निकालगे क्या ऊपर से पटकेगे, अदर ही गाडेगे - अपनी जो इच्छी होगी करगे।' ठाकुर ने यह सुनकर उसे भी कैद मे दे डाला।

एक दिन ठाकुर बाहर टहलकदमी कर रहे थे, चौधरानी उधर से निकली हाथ मे पशुओ को बाधने की रस्सिया लिए थीं। कहने लगी - 'अन्नदाता। घणीखम्मा। दीन परवर। मैरे घर मे तीन डगर (पशु) हैं उनको ढूढती फिरती हू। आपने उनको कही फाटक (आवारा पशुओ का स्थान) मे डाला हो तो मैं उनको बाधकर अपने घर ले जाऊ।' चौधरानी की मीठी वाणी सुनकर ठाकुर हसे और कहने लगे - 'ये तीनो जानवर मेरे फाटक मे हैं ले जा अब जरा बाधकर रखना।'

शब्द सम्हारे बोलिए, शब्द के हाथ न पाव।
एक शब्द करे औषधि एक शब्द करे घाव॥

ताल भग क्यू खाय

राजा था तो कजूस मूजी एकदम मक्खीचूस। पर राजकुमार राजकुमारी और मत्रियो के अनुनय आग्रह के कारण झुक गया और नट-नटी के खेल अपने यहा करवाने की आज्ञा प्रदान कर दी।

रग भूमि सजाई गई। नट-नटी विशेष उत्साह से अपनी कला दिखाने और इनाम पाने की गरज से खूब सज-धज कर आए। राजा-रानी राजकुमार राजकुमारी मत्रि मडल शहर के सभात स्त्री-पुरुष सभी उस दिन तमाशा देखने व अपने को दिखाने जमा हो गए।

नटी नाचती रही कला कौतुक दिखाए गए, नट अपनी विद्या का आज दिखाकर बेहद खुश था। चारो ओर 'वाह-वाह' की आवाजे गगन-मडल मे गुजरित थी। पर राजा न हिला न डुला। खुशी को यदि जाहिर करेगा तो कुछ देना पडेगा इस मारे भीतर अपने को मसोसे जड बना रहा।

सुबह के चार बजने को आया। नटी थककर निढाल होने लगी। हड्डी-हड्डी जैसे चरमराकर टूट ही जाएगी। उसने धीरे से कहा 'आ राजा रीझे नहीं मधरा ढाल बजाया।' पर नट ने ढाल पर थाप मारी और गाकर कहा -

"बहुत गई थोडी रही थोडी भी अब जाय।
नट्ट कहै सुण नट्टणी ताल भग क्यू खाय॥"

जसे ही राजकुमारी ने यह सुना-उसने गले का हार नट की ओर फेक दिया। राजकुमार ने स्वर्ण-ककण दे दिए और एक साधु ने आगे बढकर एकमात्र अपना कबल उतार कर भेट कर दिया। खेल समाप्त हो गया।

दूसरे दिन राजा ने राजकुमार को बुलाकर कहा 'यो तुम देओगे तो सारा राज लुटा दोगे।' राजकुमार ने कहा 'महाराजा। यह गुरु दक्षिणा थी इनाम नहीं था। आप बूढे हो गए, मुझे राज नहीं दे रहे थे तो मेरे मन मे आपको मारकर गद्दी लेने की थी। पर जब यह सुना "बहुत गई थोडी रही थोडी-सी अब जाए" तो मेरी आख खुल गई। राजकुमारी ने कहा मैने गुरु दक्षिणा दी है। आप मेरा विवाह दहेज खर्च के डर से नहीं कर रहे थे। मैं मत्री के लडके से साथ सारे गहने लेकर भागने की तैयारी मे थी पर मैने सोचा - 'बहुत गई ' अत मैं शात हो गई हू। साधु ने भी कहा - 'मेरा मन बुढापे मे डिगने लगा था नट की बात से मुझे ज्ञान का उजाला हुआ। मेरे पास जो था वह भेट कर दिया।'

राजा को अब समझ पडी-अपनी गलतिया। राजकुमार को राजगद्दी दी। राजकुमारी का विवाह धूमधाम से किया और नट नटी को भी इनाम देकर राजी किया।

आचार्य के सामने झुकते सम्राट्

पाटलिपुत्र का राजपथ आज सम्राट् के स्वागत के लिये सजा हुआ है। गजारूढ सम्राट्, शिविका पर लटी हुई ह सामाज्ञी चारो आर अश्वो, रथा की पक्तिया। पौर कन्याए पुष्प वृष्टि के लिए छता पर आरुढ, नव वधुए गवाक्षा के छिद्रा से झाकती हुई उन्ह कमलयुक्त कर रही हैं।

सम्राट् को जैसे ही सवाद मिलता है कि आचार्य-पाद अपने बटुक-समुदाय के साथ पदचारी करते हुए इसी पथ से आ रहे हैं।

सम्राट् ने आज्ञा दी कि सब प्रजाजन मार्ग के दाना ओर खडे हो जाए ओर बीच का रास्ता खुला छोड दे। आज्ञा का तुरत पालन हुआ। सारा जन समुदाय मार्ग के दोना ओर खडा हो गया।

जैसे ही आचार्य सम्राट् के पास पहुचे, गजारूढ सम्राट् नीचे उतरे झुक कर अपना स्वर्ण मुकुट आचार्य के पाद-पद्मो मे झुका दिया। आचार्य शात भाव से 'प्रजा के कल्याण म लगे रहो' कहते हुए आगे चल पडे।

यह भारत के इतिहास की एक घटना है। जब सतो, विद्वानो, आचार्यों और छात्र-छात्राआ के लिए मार्ग खुला छोड दिया जाता था। सम्राटा की प्रयाण यात्राए रुक जाती थीं ओर उनके स्वर्ण-मुकुट श्रद्धा से झुक जात थे। पर आज?

घबराये हुए ग्रह-नक्षत्र

आकाश म ग्रहो का सम्मलन हुआ। चद्रमा मगल राहु केतु, शनि वृहस्पति आदि सत्र माजूद थे पर उनक चेहरा पर पहले जसी चमक नहीं थी। चद्रमा न शिकायत की - 'मर ऊपर बाहरी शक्तिया के आक्रमण का प्रभाव दृष्टिगाचर हा रहा ह - मरा तो हुलिया ही त्रिगड रहा ह। कभी राकट चल आ रह ह ता कभी उपग्रह यान। कभा काई कमबख्त 'लाइका' तो कभी 'लूना' टपक पडत ह। कभी काई आर्मस्टाग मेरे शरीर को कुरेद रहा हैं ता कभा राक्षस राबाट रौंदता चला जाता है।

मगल न चद्रमा की बात का समर्थन किया। उसने अपना प्रभाव कम हान का भी जिक्र किया - राकेट ओर दूरबीन उसकी आर भी तने हें। बृहस्पति ने कहा - मेरा बडप्पन धार-धार छाटा हाता चला जा रहा है। शनि राहु केतु एक साथ बोले - हमारा दबदबा व डर अब कहा रह गया? ग्रह एक मत थे कि उनका प्रभाव घट रह है - कुछ किया जाए अन्यथा धीरे-धीरे वे निस्तेज व प्रभावहीन हा जाएग। आवश्यकता हे अब हम भी अपना ग्रहयाग देख।

दूरदर्शी उद्यमी लाग ऊचाइया पर दृष्टि कद्रित रखत हैं जिनसे ग्रह भी घबराते हैं। पर उन निठल्ले निरद्यमी लोगा का क्या कहे जो अब भी ग्रहा का प्रभाव अपन हाथा की लकीरा आर जन्म कुडलिया म ढूढ रह हैं।

मनुष्य — एक सकल्प-मात्र

जीवन का एक अर्थ ह - जल। हम जीवन की समग्रता का इस जल के माध्यम से समझ सकते ह। जल के तीन रूप हैं - एक रूप ह - जमा हुआ बर्फ क रूप म दूसरा रूप ह - तरल - जो हमेशा नीच की आर बहता ह पर वही जल जब अग्नि का स्पर्श पा लेता ह भाप बनकर ऊचा उठता ह।

हमारे जीवन का प्राय रूप बर्फ की तरह हाता है। लाखा-लाखा व्यक्ति यदि अपने जीवन के विषय म विचार कर ता लगेगा - उनका जीवन बधा बधाया लकीरा से घिरा जडवत् रहा। बर्फ जस की तस रहती है। वह न नीचे बहती है न ऊपर उठती है - बस पडी है - एक सी। इसी तरह का एक जीवन होता ह। न कुछ अच्छा बना न बुरा। खाया कमाया छाट से परिवार का पाला थाडे म सुख-दु ख को भोगते भुगतते रह आर फिर पटाक्षेप। या फिर कुसग म पड गए और पानी की तरह नीचे ही नीचे बहते गए, थाडा कीचड बनाया ओर सूख गए।

पर धन्य है - उसका जीवन - जो महापुरुषा की सपर्क की आग से वाष्प बना ऊपर उठा मेघ बन-उमडा घुमडा आर सूखी धरती को सरस आर हरा-भरा बनाने क लिए मिट गया। बर्फ का जीवन मध्यम नीचे की आर बहत जल का जीवन अधम ओर वाष्प का जीवन उत्तम ह।

ऐसे उत्तम जीवन को पाया जा सकता ह - प्रश्न है - सकल्प का। क्याकि यह मनुष्य कुछ नहीं - एक सकल्प मात्र है। 'सकल्पाऽय पुरुष ।'

सगीत की दुनिया यमुना मेया सी - म इक बूद

चादनी रात। यमुना के जल म इठलाती नाकाआ क झुड। पेडा पर उतरती चादनी और जल म झूलत समीपस्थ महला आर पेडा के प्रतिबिब।

ऐस सुहाने समय म शाही बजरे पर सर का निकले अकबर आर उनका सगीत रत्न तानसेन। यमुना की लहरा का कलरव आनद की सृष्टि कर रहा था। ऐसे म तानसन का सगीत स्वर उभरा और अकबर को भाव-विभार कर दिया। अकबर ने कहा - 'तानसन! मने तुम्हारी दीपक राग मेघ मल्हार आर अन्य कई राग-रागिनिया सुनी हें पर आज जसा मधुर सगीत मने जीवन म कभी नहीं सुना। आखिर आज के इस दिलोदिमाग पर छा जाने वाले सगीत का राज क्या हे?'

'जहापनाह!' तानसेन ने अर्ज किया - 'आज में किसी की फरमाइश पर सगीत पश नहीं कर रहा हू। यह ता यमुना मेया का आदेश ह। आकाश से उतरती चादनी की प्रेरणा हे। प्रकृति की मनोरम गोद है जा मुझे स्वत स्वर प्रदान कर रही है।' अकबर बाला - 'तानसेन! वाकई तुम सगीत की दुनिया के बेताज बादशाह हो।'

तानसेन न चलती नौका से यमुना क पानी म अगुली डुबाकर बाहर निकाली तथा उससे झरती चमकती बूद की तरफ इशारा करते बाले - 'आलमपनाह! मरी स्थिति ता इस बूद जेसी हे, सगीत की दुनिया तो यमुना मेया के जल की तरह अगाध ह।'

ब्रह्माण्ड मे धरती की भी औकात नही

आल्सिबाइडिम नाम का एक जमींदार था। उसे अपनी सपत्ति आर जागीर पर वेहद गर्व था। वह किमी-न-किसी का वुलाता, उसे भाजन कराता और अपने वभव एश्वर्य और प्रभाव का खूब वर्णन करता। एक बार सुकरात क पास जाकर अपन ऐश्वर्य की डींग मारन लगा। सुकरात शात भाव से धेर्य क साथ सुनते रहे। बाद म सुकरात उठे आर सारी पृथ्वी का एक नक्शा ल आए।

नक्शा फलाकर व जमींदार से पूछन लग - 'अपना यूनान दश इसम दिखाई दता हे?'

'यह रहा यूनान।' इधर-उधर टटोलने क बाद जमीदार ने नक्श पर अगुली रखी।

सुकरात - 'और अपना एटिका प्रात?'

बडे मुश्किल स जमींदार अपन छाट से प्रात को ढूढ सका जा एक तुच्छ बिदु सा था।'

सुकरात - 'इसम आपकी जमींदारी की भूमि, आपके महल और आपका वैभव स लदा कक्ष कहा ह?'

जमींदार - 'श्रीमन्। नक्श म इतनी छोटी जागीर केसे आ सकती है।'

सुकरात - 'इतने बड नक्शे मे जिस जमीन को एक क्षुद्र बिदु बनाकर भी दिखाया नहीं जा सकता, फिर इस पर गर्व केसा? इस पूरे ब्रह्माड मे हमारी इस धरती की भी कोई औकात नहीं, फिर तुम्हारी कैसी जागीर। साचा इस पर गर्व करना कितनी क्षुद्रता हे।' जमींदार को प्रथम-प्रथम जीवन का नग्न सत्य दीख पडा।

अपढ किसान ओर पादरी

हड्डिया तक को कपा देने वाली तीर की तरह तीखी नुकीली हवा बह रही थी। हिमपात से धरती ढक गई। चर्च म अकला बठा पादरी वस्त्रा से ढका इतजार करता रहा आख फाडकर दखता रहा। बीच-बीच म झपकी लेता ऊघता, बुत बना बठा रहा। सोच रहा था आज ईशु की वाणी सुनने सुसवाद का ग्राहक कोई नही आ सकूगा।

इतन म परा की आहट सुनाई दी। वह चोंक गया। देखा एक अपढ किसान आया ह।

पादरी - 'भक्त। लगता ह आज 'सरमन' न हो सकेगा। सर्दी क मारे कोई भी नहीं आया ह।'

किसान 'फादर। धर्म की बात ता म नहीं जानता। म तो निरा किसान हू। हमारे पास शाम को यदि गाय भेड या बकरिया न पहुचे आर एक - केवल एक गाय भी पहुच जाव ता भी हम उसको भूखा नहीं रखेगे। हम उसके लिए फौरन चार-पानी का प्रबध करग खूब सेवा करगे बल्कि उसकी सार सभार अधिक करगे।'

पादरी का अपने कर्त्तव्य का जसे बोध हुआ। उस दिन पादरी ने खूब झूमकर मस्ती म भर - ईशु सवाद की भरपूर विशद सरल सरस व्याख्या की। पादरी गद्‌गद था आर किसान धन्य भाग्य।

अत मे पादरी ने किसान क प्रति आभार प्रकट किया कि आज तुमने मुझे नया प्रकाश दिया। मुझे कहना है - सुनने वाला चाह एक हो या सौ हो। कोई भी न आवे तो मुझ कहना हे अपने आप से अपने को ही श्राता बनाकर।

तेली का बेल - नदी न बनने की नियति

एक बैल है तली का बैल घाणी का बैल। वह जीवन भर चलता ह पर वास्तव म वह अपनी ठौर पर ही खडा ह।

तेली उसकी आख बद करने की पट्टी नहीं लगाता - पर उसकी दोनो आखो के सामने नहीं आखो के समानातर एक तरह की पट्टी बाधता ह जिससे वह गोल चक्कर को थोडा सा सामने देख सके वह सीधा लगे। दो कदम चला तो उसे हुआ सीधे चलने का भ्रम। इस प्रकार वह पट्टी चारो ओर अगल बगल देखने की शक्ति को रोकती है। वह दो कदम सीधा देखने क भ्रम म रहता ह।

तली का बैल काश सीधा स्वच्छद अपनी आखो को पूरी खुली रख कर चलता तो वह सरलता से अनायास कलाश पहुचकर विश्राम लेता। भगवान् आशुतोष शिव प्रसन्न होकर उस बैल को नदी बना लेते। वह नदीश्वर बन जाता अवढर दानी शिव का प्रमुख गण। हम लोग भी इसी प्रकार प्रगति क भ्रम म अनेक बार भान हो जाते ह फिर इतिहास का निर्णय होता ह हम भटक गए थे। व्यक्ति ही नहीं समाज ही नहीं राष्ट्र भी भटक जाता है - वर्षो तक। सही निर्णय मुक्त दृष्टि विवेक और निश्चय जब हमारे पास होते ह तभी 'चरैवेति चरैवेति' सार्थक ह नहीं तो होता ह - भटकना टहलना या चक्कर काटना।

मिलन मिलन मे भेद

एक भौरे ने अपनी जाति के कीडे-गुबरेल को गोबर म लिपटे उसकी गोलिया बनाकर गाडी की तरह गेद सा गुडकाते देखा। भौरे न कहा 'बधु! यहा कहा जीवन का बर्बाद करने मे लगे हो। जानते नही पास म ही फूलो से लदा एक बगीचा है। तुम और हम मूल म एक ही जाति के है। दोना काले एक वर्ण! आओ दोना मिल और बगीचे पर राज करे।'

गुबरेला बेहद खुश हुआ और भौरे की बताई पगडडी से बगीचे मे पहुचा। भौंरा उडता, फूल पर बैठता, नीचे रेगते गुबरेल से पूछा - 'क्या! केसी सुगध है - यह गुलाब यह केवडा यह चपा यह मालसिरी - कसी-कैसी न्यारी-न्यारी मीठी महक है।' गुबरेला - 'कहा है सुगध! मुझ तो कुछ भी पता नही चलता। सारा 'जस का तस' है।' भौरे को आश्चर्य हुआ - निदान उससे पूछा 'तू खाली आया हे या कुछ लेकर।' गुबरेला - 'खाली नही मेरे पास गोबर की गोली है।' भौरे ने कहा 'पुरानी आदत को लेकर चलने वाले मूर्ख! नए का आनद केसे उठा सकता है?'

आज भी दो मिलते है - एकता का ढोग रचते हैं पर सबके भीतर अपना कूडा-कर्कट भरा होता हे। इससे ऊपर से मिलते हैं - पर भीतर तीन तेरह होने का खतरा बराबर बना रहता है।

एक मिलन होता हे - सिह बकरी का - यह मिलन आत्महत्या है। एक मिलन होता हे - दूध और पानी का - यह धोखा है। एक मिलन है - शहद और घी का साम्यवादी बराबर का मिलन - जो विष बनता हे। मिलन-सच्चा मिलन हे - दूध और मिश्री का - दोनो ने एक-दूसरे को गौरव दिया - दोनो हैं एक हैं अलग-अलग अपनी-अपनी अस्मिता लिए।

पडित होइ सो हाट न चढा

तोता क्या था - साक्षात् शुकदेव का ही अवतार था। हीरामन उसका नाम था, वह पद्मावती के साथ रहता था। तोता महापडित था - वेद शास्त्र का पूरा जानकार। सूफी फकीर जायसी के शब्दा मे

रहहि एक सग दोऊ पढहि सास्तर वद।
ब्रह्मा सीस डोलावहिं, सुनत लाग तसभेद॥

-- दाना एक साथ रहते और वेद शास्त्र पढते थे। उनके पढने सुनन म इतना आनद आता था कि और तो और ब्रह्मा भी सिर हिलाने लगते थे।

पर दुर्दिन ऐसे आए कि वह तोता एक चिडीमार के हाथ लग गया और वह उसके सुदर रूप रग का दखकर सरआम बाजार म बेचने ले गया। वहा एक विद्वान ने उसे देखा तो एसा लगा - यह तोता साधारण तोता नहीं। पूछने पर तोता कहने लगा -

'हे ब्राह्मण देवता। तब मुझमे बहुत गुण थे, जब म पिजडे से मुक्त पक्षी था। अब मुझमे गुण कहा - मैं तो अभी केद म हू, हाट मे बिकने आया हू। जो पडित होता तो वह हाट मे बिकने नही आता। मैं बिकना चाहता हू, अतएव मरी सारी विद्या भूली हुई समझा।'

जायसी के इस तोते का दर्द क्या आज की व्यवस्था पर करारा व्यग्य नहीं है -

पडित हाइ सो हाट न चढा।
चहों बिकाई भूलि गा पढा॥

जब जब पाडित्य बिकता हे, राष्ट्र भ्रात होता ह। पाडित्य जब स्वतत्र अस्मिता लिए हाता ह - राष्ट्र प्रकाश पाता है।

मिलन मिलन मे भेद

एक भौरे ने अपनी जाति के कीडे-गुबरेले को गोबर मे लिपटे उसकी गोलिया बनाकर गाडी की तरह गद सा गुडकाते देखा। भार न कहा, 'बधु! यहा कहा जीवन को बर्बाद करने म लगे हो। जानते नहीं पास म ही फूला से लदा एक बगीचा ह। तुम आर हम मूल मे एक ही जाति के हैं। दोना काल एक वर्ण। आआ दोना मिले और बगीचे पर राज कर।'

गुबरेला बेहद खुश हुआ और भौरे की बताई पगडडी से बगीचे मे पहुचा। भौंरा उडता फूल पर बठता नीच रगते गुबरेले से पूछा - 'क्या! कैसी सुगध है - यह गुलाब यह केवडा यह चपा यह मौलसिरी - कैसी-कैसी न्यारी-न्यारी मीठी महक है।' गुबरैला - 'कहा ह सुगध! मुझ ता कुछ भी पता नहीं चलता। सारा 'जस का तस' है।' भौंरे का आश्चर्य हुआ - निदान उससे पूछा, 'तू खाली आया है या कुछ लेकर।' गुबरैला - 'खाली नहीं मेर पास गाबर की गाली ह।' भौंरे ने कहा 'पुरानी आदत को लेकर चलने वाल मूर्ख! नए का आनद कैस उठा सकता है?'

आज भी दो मिलते हैं - एकता का ढाग रचते हैं, पर सबके भीतर अपना कूडा-कर्कट भरा हाता है। इससे ऊपर स मिलते हैं - पर भीतर तीन तेरह हाने का खतरा बराबर बना रहता है।

एक मिलन होता ह - सिह बकरी का - यह मिलन आत्महत्या है। एक मिलन हाता ह - दूध और पानी का - यह धाखा है। एक मिलन है - शहद और घी का साम्यवादी बराबर का मिलन - जा विष बनता है। मिलन-सच्चा मिलन है - दूध और मिश्री का - दाना ने एक-दूसरे का गौरव दिया - दाना हैं एक हैं अलग-अलग अपनी-अपनी अस्मिता लिए।

पडित होइ सो हाट न चढा

तोता क्या था - साक्षात् शुकदेव का ही अवतार था। हीरामन उसका नाम था, वह पद्मावती के साथ रहता था। तोता महापडित था - वेद शास्त्र का पूरा जानकार। सूफी फकीर जायसी के शब्दो म

रहहि एक सग दोऊ पढहि सास्तर वेद।
ब्रह्मा सीस डोलावहिं, सुनत लाग तसभेद॥

-- दोनो एक साथ रहते और वेद शास्त्र पढते थ। उनके पढने सुनने म इतना आनद आता था कि और तो और ब्रह्मा भी सिर हिलाने लगते थे।

पर दुर्दिन ऐसे आए कि वह तोता एक चिडीमार के हाथ लग गया और वह उसके सुदर रूप रग को देखकर सरेआम बाजार मे बेचने ले गया। वहा एक विद्वान ने उसे देखा तो एसा लगा - यह तोता साधारण तोता नही। पूछने पर तोता कहने लगा -

'हे ब्राह्मण देवता! तब मुझमे बहुत गुण थे जब मैं पिजडे से मुक्त पक्षी था। अब मुझमे गुण कहा - मैं तो अभी कैद म हू, हाट म बिकने आया हू। जो पडित होता तो वह हाट म बिकने नही आता। मै बिकना चाहता हू अतएव मेरी सारी विद्या भूली हुई समझो।'

जायसी के इस तोते का दर्द क्या आज की व्यवस्था पर करारा व्यग्य नहीं है -

पडित होई सो हाट न चढा।
चहों बिकाई भूलि गा पढा॥

जब जब पाडित्य बिकता है, राष्ट्र भ्रात होता है। पाडित्य जब स्वतत्र अस्मिता लिए होता है - राष्ट्र प्रकाश पाता है।

क्या ये छोटे-बडे दीपकर - आज भी!

विश्व का महान् विद्या कद्र नालदा आग की लपटा म जल रहा था। नान-विज्ञान के सहस्रा ग्रथ आग म जला दिए गए। क्रूरता नृशसता का एक पैशाचिक कृत्य।

कुलपति दीपकर कहीं दूर अज्ञात स्थान की आर चल पडे। सुदूर तिब्बत म श्रात पहुचे। एक बुढिया के पास रहने लगे। दीपकर उसक याको को वना मे चराते। वह बुढिया उनका भाजन खिला देती। शाम होते ही वह बुढिया आचार्य दीपकर को इशारा करती व घुटना बाहुआ क बल बैठकर बुढिया के लिए मचिका बना देत वह उन पर उस 'पीढे' पर बैठकर याका को दुहती। दीपकर सानद शात निष्कप। परिनिर्वाण का जीवत दृश्य।

इधर दीपकर की तलाश म भावुक भक्ता प्रशसका की दाड शुरू हुई। एक दल तिब्बत पहुचा - शाम के समय। दीपकर आसन बनाए थे - बुढिया के लिए - वह दुहने म लगी थी। दीपकर की यह दशा दखकर सभी क्षुब्ध हुए। उन्हाने बुढिया से कहा - 'मूर्खा! क्या करती हे।' आचार्य दीपकर की जय-जयकार हुई। बुढिया कुछ न समझ पाई। दीपकर ने वहा रहकर तिब्बती भाषा का व्याकरण तेयार किया था। दीपकर का लेकर आनदमग्न दल प्रस्थान का तैयार हा रहा था। पर बुढिया कह रही थी - 'तुम इसका ले जाओगे ता मैं याक केसे दुहूगी?'

क्या आज भी कितन ही छाट-बडे दीपकर इसी प्रकार किसी के याक दुहने क कार्य मे नहीं लगे हैं?

लक्ष्मण और आसू!

'तात! कुटिया कहा बनाई जाए?' लक्ष्मण ने राम से पूछा।

राम - 'जहा तुम्हारी इच्छा हो, जहा मन हो, वहा बना लो।'

यह सुनकर बिना कुछ बोले वे उठे और पास ही पेड के पीछे जाकर उदास बैठ गए। सीताजी समझ गईं। वे गइ जाकर देखा - लक्ष्मण! झर-झर आसू बहा रहे हैं। सीता स्तब्ध थी - 'लक्ष्मण और आसू!'

सीता लौट आईं। राम से उलाहने के स्वर मे कहने लगीं - 'आर्य पुत्र! आपने लक्ष्मण से क्या कह दिया वे तो रो रहे है।' राम ने उत्तर दिया, 'देवी! मैंने तो ऐसा कुछ नहीं कहा।' राम शीघ्रता से लक्ष्मण के पास गए और रोता देखकर कारण पूछने लगे। लक्ष्मण ने कहा 'प्रभो! मैंने आपको माता-पिता, भाइ-बधु, सब समझ रखा है - इतना ही नहीं मैं तो केवल आपका आज्ञानुचर मात्र हू। आपका यह कहना - तुम्हारा जहा मन हो, कुटिया बनालो। आपने यह भी नहीं विचारा कि मेरा मन कहा है मेरा मन! सब कुछ आपको मन सौंप दिया है। मुझ पर आपका यह निर्दय व्यवहार '

भगवान् राम ने लक्ष्मण को गले लगाकर आसू पोछ कर, इतना ही कहा - 'मुझे क्षमा करो बधु!' और उचित स्थान पर उसे बनाने की आज्ञा दी।

लक्ष्मण जैसा तेजस्वी ओजस्वी चरित, वीर चरित पर संत सा समर्पित शून्य बना चरित विश्व मे एक है, अनूठा है। भगवान् राम की कीर्ति को फहराने वाला एक डडा - छिपा हुआ। पर जिस पर लहराता है - राम की कीर्ति का झडा।

क्या ये छोटे-बडे दीपकर - आज भी।

विश्व का महान् विद्या कद्र नालदा आग की लपटा मे जल रहा था। ज्ञान-विज्ञान के सहस्रा ग्रथ आग म जला दिए गए। क्रूरता नृशसता का एक पैशाचिक कृत्य।

कुलपति दीपकर कहीं दूर अज्ञात स्थान की आर चल पडे। सुदूर तिब्बत म श्रात पहुचे। एक बुढिया क पास रहने लगे। दीपकर उसके याका को वना म चराते। वह बुढिया उनका भाजन खिला देती। शाम होते ही वह बुढिया आचार्य दीपकर को इशारा करती व घुटना जाहुआ के बल बैठकर बुढिया के लिए मचिका बना देते वह उन पर उस 'पीढे' पर बठकर याका को दुहती। दीपकर सानद शात निष्कप। परिनिर्वाण का जीवत दृश्य।

इधर दीपकर की तलाश म भावुक भक्ता प्रशसका की दाड शुरू हुई। एक दल तिब्बत पहुचा - शाम क समय। दीपकर आसन बनाए थे - बुढिया के लिए - वह दुहने म लगी थी। दीपकर की यह दशा देखकर सभी क्षुब्ध हुए। उन्हाने बुढिया से कहा - 'मूर्खा! क्या करती है।' आचार्य दीपकर की जय-जयकार हुई। बुढिया कुछ न समझ पाई। दीपकर ने वहा रहकर तिब्बती भाषा का व्याकरण तेयार किया था। दीपकर को लकर आनदमग्न दल प्रस्थान को तयार हा रहा था। पर बुढिया कह रही थी - 'तुम इसका ले जाओग ता मैं याक केसे दुहूगी?'

क्या आज भी कितने ही छाटे-बडे दीपकर इसी प्रकार किसी के याक दुहन के कार्य मे नहीं लगे हैं?

एक नही दो बुद्ध

'भंत। यह अर्हत् पद क्या ह में इसे पाना चाहता हू।' आगतुक ने चिल्लाकर कहा। बुद्ध ने देखा आर कहा 'अर्हत् की बात छोड सौम्य। तू अभी कपाट खोलना भी नहीं जानता। तूने धक्का देकर दरवाजा खाला - किवाड चरमरा गया - यह किवाड हम सर्दी से, वर्षा से, अधड से बचाता हैं - उसक प्रति जा विनम्र हो, उससे क्षमा माग। जूता को किस बुरी तरह फेक कर आया - भले आदमी। य तुम्हारे परा को बचाते रहे - काटा से, ककडा से। जा पहले उनको सर से लगा - क्षमा माग।'

आगतुक मुडा। शात धीर पद रखकर गया। किवाडा को धीरे से प्यार से कपित करो से छूता रहा आर आसू भर नयनो से निहारता रहा। जूता को सहला कर - उन्ह माथे चढा कर - धीरे से एक कोने मे ऐसे रखा - जैसे कोमल कुसुम हा। इससे वह निरहकार हो गया - उसकी चचलता अधीरता गल गई आर इनके उपलक्ष्य स सभी के प्रति एक अहाभाव जाग गया।

वह बुद्ध की ओर मुडा। शास्ता ने देखा वह आने वाला उद्दड आगतुक नहीं - वह जा स्रोतापन्न (कितने ही जन्मा म मुक्त हाने का अधिकारी) लगा - दा कदम ओर आगे बढा तो बुद्ध को लगा - 'ना, यह तो सकृदागामी (एक ही जन्म मे परिनिर्वाण का अधिकारी) हे।' वह आगे आता गया, बदलता गया, एक घटना घटी इतिहास जुडा, एक दिव्य रूपातरण। बुद्ध के समीप आकर जब वह झुका तो शास्ता को लगा - कोई अर्हत् है। बुद्ध खडे हुए - उन्हाने प्रणिपात किया। भिक्षुका ने विस्मय से देखा - एक नहीं दो बुद्ध त्रिब-प्रतिबिब बने प्रशात मुद्रा मे स्थित हैं।

ज्ञान के लिये बलिदान

विश्व का एक महान् जिज्ञासु क्षपणक की तरह रहकर वर्षों तक नालदा विश्वविद्यालय मे ज्ञान का अशेष भडार पाडुलिपिया मे सचित कर हुएन्साग चीन के लिए प्रस्थान कर रहा था। गुरुजनो ने स्नेहाशीष दिया। समुद्री मार्ग से निरापद यात्रा हो, सहयोगी के रूप म दो छात्र साथ मे थे।

नोका चल पडी। हुएन्साग ने भारत भूमि को प्रणाम किया। समुद्र म अचानक उत्ताल तरगे उठने लगीं। कैवर्तक (केवट) अपने डाड को कभी पतवार को सभाल रहे थे। पर नोका डगमगा रही थी। नौका पर सवार कई श्रेष्ठीवर्ग अपने पण्य का लिए हुये थे। नाविको को लगा नौका क भार का हल्का किया जावे तो प्रचड लहरो से निरापद रहा जा सकता हे। उन्हान देखा पाडुलिपियो का व्यर्थ भार - उसे समुद्र मे फक दिया जाए। हुएन्साग चिपट गया उन उजले ज्ञान के अभरा से अकित ज्ञान गठरिया पर। फिर साचा गया इस चीवरधारी को फेक दिया जाए। नालदा क दाना तजस्वी अन्तवासी छात्र इस दृश्य का दख रहे थे। उन्होने कहा 'नाविको। यदि नाव को हल्का करना आवश्यक है ता इस चीन यात्री को हमारे अतिथि को ओर उसकी अर्जित ज्ञान सपदा को सुरक्षित रखा जाए और हम दाना जल समाधि क लिए प्रस्तुत हें।'

या कह कर दोना तेजस्वी तरुण नौका से कूद पड। नहीं जानते - उन्हान तरगा स कितना सघर्ष किया। ज्ञान क लिए बलिदान की यह अमर गाथा आज भी सिधु लहरा पर अकित ह। युवक डूब गए, यौवन तैर गया। ज्ञान सुरक्षित रहा। हम चाह इसे भूल जाए पर समुद्र की तरग आज भी उन दाना युवका की गाथा-करुणा स गर्व से सदा दुहराती सुनाती और जयनाद करती - थकती नहीं हें।

निरक्षरता मे ढाई आखर

आज व्रत का दिन ह। गावो म महिलाए झुड बनाकर बैठीं ह। कथा कही जा रही हे। ये पढी लिखी नही ह। दो आखर भी नहीं जानती बिल्कुल निरक्षर ह। पर हे सस्कारित। कहावत – 'ढाई आखर प्रेम का पढे सो पडित होय' इन्हीं पर चरितार्थ हे।

कहानी मे कोई आदमी हे, काई स्त्री हे, दु खी आर गरीत्र हे, व किसी दवता की मनौती मनाती हैं, पूजा करती ह – दवता प्रसन्न हो जाते ह। कहानी कहने वाली कहती ह – 'हे माता जेसे आप इस पर तुष्ट हुई है, उसी तरह सार लोगो पर तुष्ट हा।' यह शुभकामना, विश्वमगल की कामना हे, जिसे बीच-बीच मे अनपढ नारिया उच्चारित करती हें। तब क्या हमे नहीं लगता – यह तो वेदवाणी है? उपनिपद् ह? महावीर व बुद्ध वचन है? कबीर-दादू-नानक की साखी है?

कहानी मे यदि किसी काल्पनिक पात्र पर विपत्तिया का पहाड टूट पडता है, तब कहानी कहने वाली सिहर कर कहगी – 'हे देवी, ऐसा दु ख तो मरे दुश्मन को भी न देना।' शत्रु के प्रति यह प्रेम भाव क्या विश्व के जनमानस मे कहीं हे? उदारता, क्षमाशीलता – यही ता भारत है।

भोज का नया जन्म

मालवे के राजसिहासन पर बेठे राजा भाज को अभी थाडा ही समय हुआ था। प्रात काल वे रथ पर आरुढ हो उद्यान की ओर जा रहे थे। उन्हान रास्ते म गाविद नाम के यशस्वी विद्वान् को एक वृक्ष के नीचे वेठे देखा। वे रथ से उतरे उन्हाने प्रणाम किया। पर पडित गाविद न उत्तर नहीं दिया। अपनी आख मूद लीं। राजा दु खी हुए ओर विस्मित भी। राजा न कहा - 'विद्वन्! न तो आपने स्वस्तिवचन कहा, न आशीर्वाद ही दिया। आपन मुझ दखत ही दाना नेत्र भी बद कर लिए। कारण बताने की कृपा कर।'

'आप वेष्णव हें मुझे या किसी को भी आपसे भय नहीं। पर, आप कृपण हें किसी का कुछ देते नहीं हें। लोकोक्ति हे कि सुबह-सुवह यदि कजूस का मुख दिख जाए तो रोटी भी नहीं मिलती। इस अपशकुन के कारण मैंने आखे मूदी है। महाराज! यह देह नश्वर हे, कीर्ति उपार्जनीय है।'

'आपक वचनामृत से मुछे परम तृप्ति मिली है। आप की यह तेजस्वी खरी वाणी मर लिए परम आषध है। आपन मरी आख खाल दी हैं। झूठी प्रशसा करन वाले बहुत मिलते हें। आपने आख बद कर मरी आख खाल दी। मुझे आशीर्वाद द। आपने जिस भाज का देखा था वह नहीं है एक नए उदार भाज का जन्म हा गया है। आप प्रणम्य हें।

हित मनोहारि च दुर्लभ वच

सच है हितकारी वचन मनाहारी प्राय नहीं हात।'

निरक्षरता मे ढाई आखर

आज व्रत का दिन है। गावा मे महिलाए झुड बनाकर बैठीं ह। कथा कही जा रही है। य पढी लिखी नहीं ह। दो आखर भी नही जानतीं बिल्कुल निरक्षर हैं। पर है सस्कारित। कहावत - 'ढाई आखर प्रेम का पढे सो पडित हाय' इन्ही पर चरितार्थ हे।

कहानी मे कोई आदमी ह, काई स्त्री ह, दु खी ओर गरीब है, वे किसी दवता की मनौती मनाती हैं, पूजा करती ह - देवता प्रसन्न हो जाते ह। कहानी कहने वाली कहती हे - 'हे माता, जेसे आप इस पर तुष्ट हुई है, उसी तरह सारे लोगा पर तुष्ट हो।' यह शुभकामना, विश्वमगल की कामना हे, जिसे बीच-बीच मे अनपढ नारिया उच्चारित करती हैं। तब क्या हम नहीं लगता - यह तो वेदवाणी है? उपनिषद् है? महावीर व बुद्ध वचन है? कबीर-दादू-नानक की साखी है?

कहानी मे यदि किसी काल्पनिक पात्र पर विपत्तियो का पहाड टूट पडता है, तब कहानी कहने वाली सिहर कर कहेगी - 'हे देवी, ऐसा दु ख तो मेरे दुश्मन को भी न देना।' शत्रु के प्रति यह प्रेम भाव क्या विश्व के जनमानस म कहीं हे? उदारता क्षमाशीलता - यही तो भारत है।

नाद रीझ तन देत मृग

रीझता ह पर दता कुछ नहीं। खीझता ह विगाडता कुछ नही। फिर कसी रीझ? कसी खीझ?

यदि रीझ कर निहाल न किया खीझ कर शत्रु का निर्मूल न किया ता ऐसी रीझ खीझ व्यर्थ अकाज वकाज। कविवर रहीम का कथन हे

नाद रीझ तन देत मृग नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु ते अधिक रीझेहु कछू न देत॥

- हरिण नाद पर सगीत पर रीझ कर प्राण दे दता ह मनुष्य रीझ कर धन आर प्रम दाना अर्पित करता है। पर कवि की दृष्टि म वे मनुष्य पशु से भी गए बीत हें जो रीझकर कुछ नहीं देते।

एक बार वन म हरिण पारधी की राग पर मुग्ध हा गया तब हरिणी ने कहा -

सुण काला कामण कह सींगाणा भडमल्ल।
आप हुया बस राग र हिरण्या कोण हवल्ल॥

'ह सींग वाले काले हरिण। आप ता राग के वश म हो गए, फिर हमारा क्या हाल हागा?'

हरिण न कहा -

'सरप रीझ्यो पकडाय ले मृग रीझ्यो खामार
नर रीझ्यो कुछ दे नहीं वा रो धिक्क जमार।

फिर हरिण ने शिकारी से कहा -

मो सीगन को नादकर मो तुच तलै बिछाय।
मो आतन की तात कर गाव-गाव तू गाव॥

हे शिकारी। दखता क्या है? मर सींग से सींगी बाजा बनाना। मरे चर्म (मृग चर्म) को बिछा कर बठना। मेरी आतो से तत्री वाद्य बनाना और फिर गाना-गाना और गाना ही गाना।'

यह है पूर्ण समर्पण का एक निष्कप एक तान स्वर।

खोपडी मे छिपा ब्रह्माण्ड

एक वार विश्व के महान ऋषि वज्ञानिक आइस्टीन माउट विल्सन स्थित वधशाला दखन गए। उस समय तक दुनिया की सबस वडी दूरवीन - सौ इच व्यास वाले दर्पण की इसी वधशाला म स्थापित थी।

इस भव्य दूरवीन का दखकर श्रीमती आइस्टीन न वेधशाला के अध्यक्ष से पूछा - 'इतनी वडी दूरवीन भला किस काम आती ह?'

अध्यक्ष न कहा - ब्रह्माड की रचना समझने के लिए।

'आश्चर्य की बात ह। मरे पति यह सब एक पुरान लिफाफ क कागज पर करत हैं।'

कुछ लोग आइस्टीन स पूछत कि उन्हान अपने उपकरण कहा रखे हैं ता वे अपनी खोपडी का थपथपात आर मुस्करा दत। एक आगतुक ने उनकी प्रयोगशाला के बारे मे जानना चाहा ता उन्हाने उस अपना फाउटन पन दिखाया। महान क्रियासिद्धि न ता उपकरणा म ह और न प्रयोगशालाआ म। 'ब्रह्माडे सो पिडे' यही विश्व का सनातन सिद्धात है।

'क्रियासिद्धि सत्वे भवति महताम् नोपकरण।' महान पुरुषा की क्रिया सिद्धि उनकी आत्म-शक्ति म ह बाह्य उपकरणा मे - दिखाऊ सामग्री म नहीं।

नाद रीझ तन देत मृग

रीझता ह पर देता कुछ नहीं। खीझता ह बिगाडता कुछ नहा। फिर कैसी रीझ? कैसी खीझ?

यदि रीझ कर निहाल न किया खीझ कर शत्रु को निर्मूल न किया तो ऐसी रीझ खीझ व्यर्थ अकाज बेकाज। कविवर रहीम का कथन है-

नाद रीझ तन देत मृग नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु ते अधिक रीझहु कछू न देत॥

- हरिण नाद पर सगीत पर रीझ कर प्राण दे देता ह मनुष्य रीझ कर धन और प्रेम दोनो अर्पित करता है। पर कवि की दृष्टि म वे मनुष्य पशु से भी गए बीते ह जो रीझकर कुछ नहा देते।

एक बार वन म हरिण पारधी की राग पर मुग्ध हो गया तब हरिणी ने कहा -

सुण काला कामण कह सींगाणा भडमल्ल।
आप हुया बस राग र हिरण्या कोण हवल्ल॥

'ह सींग वाल काल हरिण! आप तो राग के वश म हो गए, फिर हमारा क्या हाल होगा?'

हरिण ने कहा -

'सरप रीझ्यो पकडाय ले मृग रीझ्यो खामार
नर रीझ्यो कुछ दे नहीं वा रो धिक्क जमार।

फिर हरिण ने शिकारी स कहा -

मो सींगन को नादकर मो तुच तले बिछाय।
मो आतन की तात कर गाव-गाव तू गाव॥

'ह शिकारी! देखता क्या ह? मर साग से सींगी बाजा बनाना। मर चम (मृग चर्म) को बिछा कर बठना। मरी आतो स तत्री वाद्य बनाना और फिर गाना गाना और गाना ही गाना।'

यह है - पूर्ण समर्पण का एक निष्कप एक तान स्वर।

माल पराये हत्थ

जोधपुर नरेश महाराजा जसवत सिंह वीर थे, आचार्य थ, कवि एव आध्यात्मिक शक्तिया से सपन्न थ। व साधना मे इतने आग बढ गए थे कि जब चाह समाधि म चल जात। उन्हान कह रखा था कि जब मुझ मा वप पहुच जाव मुझ इन्हीं वस्त्र आभूषणा क साथ ही अग्निदव को समर्पित कर दिया जाए।

एक दिन या ही कातूहलवश समाधि म लीन हो गए। पास क सवका न दखा न सास आवे, न नाडी चले, न हिले न डुले - समझा खेल खत्म। नाकरा ने पहल ता उनक हाथ के कडे निकाल और अगूठिया गायब कर दी। इधर जब राजमहल म पता चला ता उनका भूमि पर लिटा दिया और हाग क हार और मुकुट उतार दिए गए।

इतन म महाराजा का समाधि भग हुई। व जाग गए, उठ बैठे और अपन का निराभरण समझकर सारी बाते समझ गए। दुनिया की असलियत सामन आ गई।

वे कुछ बाले नहीं। केवल उपदेश क लिए इतना ही कहा -

'खाया साइ खरचिया दिया सोई दत्त।
जसपत भुई पाढाइया माल पराए हत॥'

धन यदि पास म हा खाआ खरचा देकर जोडकर आनद लो। नहीं तो लोग भूमि पर लिटा दग। सारा धन पराया हा जाएगा।

आगे सू पीछा भला

'तुम्हारा नाम मुझे नापसद है इसलिए मैं तुम्हे तलाक देकर छोड रही हू।' बेचारे पति ने कहा 'नाम? यह तो मेरे वश की बात नहीं थी। माता-पिता ने जो नाम दिया वह मैने स्वीकारा। और कोई दोष?' 'ना दोष कोई नही। नाम 'लट्टूरा' भद्दा और लजाने वाला।' यो कहकर वह नए अच्छे नाम वाले पति की तलाश मे चल पडी।

देखा एक अर्थी चली जा रही है। स्नेही कुटुबी साथ मे हैं। पूछा - 'कौन मर गया है?' एक ने कहा 'अमर सिह।' यह सुनकर वह घबडा गई। अमर सिह फिर भी मर गया। नाम उसे चिढाने लगा।

वह नए शहर मे पहुची। एक आदमी धूल से सना भागा चला आ रहा था - तलवार लटकाए। लोग विनोद कर रहे थे 'वाह! शूरवीर सिह जी! नाम की लजा के भाग आए।' सोचने लगी नाम की यह कैसी विडबना। नाम के शूर काम भगोडे का। नाम का नशा उतर गया। वह पछताती लौट आई।

अमरा नै म्हे मरता देख्या भागत देख्या सूरा।
आगे सू पीछा भला नाम भला लट्टूरा॥

कभी-कभी व्यक्ति और समाज ही नहीं पूरा का पूरा राष्ट्र किसी नए की तलाश मे बेतहाशा दौडता है - पुरानी सारी परपराओ को तोडकर नए की तलाश में। फिर मन मे पछताता है - 'आगे सू पीछा भला।' छोडे, पर विवेक के साथ लेवे, पर विवेक के साथ। 'सग्रह त्याग न बिनु पहिचाने' - यह सूत्र हमारे जीवन का मत्र बने।

माल पराये हत्थ

जोधपुर नरेश महाराजा जसवत सिह वीर थे, आचार्य थे, कवि एव आध्यात्मिक शक्तिया से सपन्न थे। वे साधना म इतने आग बढ गए थे कि जब चाह समाधि म चल जाते। उन्हाने कह रखा था कि जब मुझ सो वर्ष पहुच जाव, मुझे इन्हीं वस्त्रो, आभूषणा के साथ ही अग्निदव को समर्पित कर दिया जाए।

एक दिन या ही कातृहलवश समाधि मे लीन हो गए। पास के सेवको ने देखा – न सास आवे न नाडी चले, न हिलें, न डुल – समझा, खेल खत्म। नाकरा ने पहले ता उनके हाथ के कड निकाले और अगूठिया गायब कर दी। इधर जब राजमहल म पता चला तो उनका भूमि पर लिटा दिया आर हीरो के हार और मुकुट उतार दिए गए।

इतने म महाराजा की समाधि भग हुई। वे जाग गए, उठ बैठे और अपने को निराभरण समझकर सारी बाते समझ गए। दुनिया की असलियत सामने आ गई।

वे कुछ बोले नहीं। केवल उपदेश के लिए इतना ही कहा –

'खाया सोइ खरचिया दिया सोई दत्त।
जसवत भुई पोढाइयो माल पराए हत्त॥'

धन यदि पास मे हो खाआ, खरचा दकर बाटकर आनद ला। नहीं तो लोग भूमि पर लिटा दगे। सारा धन पराया हो जाएगा।

आगे सू पीछा भला

'तुम्हारा नाम मुझे नापसंद है इसलिए मैं तुम्हें तलाक देकर छोड़ रही हूं।' बेचारे पति ने कहा 'नाम? यह तो मेरे वश की बात नहीं थी। माता पिता ने जो नाम दिया वह मैंने स्वीकारा। और कोई दोष?' 'ना, दोष कोई नहीं। नाम 'लट्टूरा' भद्दा और लजाने वाला।' यों कहकर वह नए अच्छे नाम वाले पति की तलाश में चल पड़ी।

देखा एक अर्थी चली जा रही है। सही कुटुंबी साथ में हैं। पूछा - 'कौन मर गया है?' एक ने कहा 'अमर सिंह।' यह सुनकर वह घबड़ा गई। अमर सिंह फिर भी मर गया। नाम उसे चिढ़ाने लगा।

वह नए शहर में पहुंची। एक आदमी धूल से सना भागा चला आ रहा था - तलवार लटकाए। लोग विनोद कर रहे थे 'वाह! शूरवीर सिंह जी! नाम को राजा के भाग आए।' सोचने लगी नाम की यह कैसी विडंबना। नाम के शूर काम भगोड़े का। नाम का नशा उतर गया। वह पछताती लौट आई।

अमरा नै म्हे मरता देख्या, भागत देख्या सूरा।
आगे सू पीछा भला नाम भला लट्टूरा॥

कभी-कभी व्यक्ति और समाज ही नहीं पूरा का पूरा राष्ट्र किसी नए की तलाश में बेतहाशा दौड़ता है - पुरानी सारी परंपराओं को तोड़कर नए की तलाश में। फिर मन में पछताता है - 'आगे सू पीछा भला।' छोड़ पर विवेक के साथ लेवे पर विवेक के साथ। 'संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने' - यह सूत्र हमारे जीवन का मंत्र बने।

चितन मनन

गरुड की कथा इतिहास बने

अभी अडा फूटा ही था कि पक्षिराज गरुड प्रचड ऊर्जा के साथ उड चले। पखो को उन्होने झझा से तौला आखो की कोरो ने अमाप आकाश को मापा और हृदय मे स्वर्ग से अमृतघट प्राप्ति की महत्त्वाकाक्षा को सजाया। समय कहा? पजो मे गजराजा को दबोचा विशाल वट वृक्ष की शाखा पर बैठे तो वह टूट गई गिरि शिखरो पर क्षण भर विश्राम। केवल दीखता था – अमृतघट। वेग से स्वर्ग काप गया। इद्र का प्रचड वज्र श्रीहत। विष्णु से भिडे – विष्णु मुग्ध – गरुड मुग्ध। दोनो मे अटूट मैत्री। गरुड विष्णु के सेवक, विष्णु के वाहन बने और उनके सिर पर छत्र की तरह छा गए – गरुडध्वज नाम को सार्थक करते। अमृत घट लाए – वदिनी मा के लिए, पर स्वय एक बूद का आस्वाद नही। यह है निर्लोभ अनासक्त पुरुषार्थ की अमर गाथा।

गरुड वैनतेय पक्षिराज गरुड प्रतीक है – अदम्य ऊर्जा के प्रचड वेग के दुर्दमनीय साहस के, अस्खलित धैर्य और नि सग महत्त्वाकाक्षा के।

हमारा नवोदित राष्ट्र आज गरुड के वेग से सज्जित है, विराट् महत्त्वाकाक्षा के सपने सजोए। समय आ गया है, अब गरुड की कथा – हमारा इतिहास बने। इतिहास के हीरकाक्षरो मे हमारी प्रतिभा के उजले बिदु भी अपनी आभा समर्पित करे। इतना ही अलम्।

तुच्छ मूल्य के लिये अमूल्यो की बलि।

एव मे सुत्त - ऐसा मने सुना है।

शाक्य और कालिय राज्या के बीच राहिणी नामक नदी बहती थी दानो जनपद उसके जल से खेता की सिचाई करते थे। एक बार पानी को लेकर दोना जनपदो के किसान लड पडे। दोना राज्या के क्षत्रियगण सेना लेकर अपनी प्रजा की पुकार पर लडाई के मैदान म उतर आए।

शास्ता उधर से निकले। शाक्य और कोलिया ने उनको देखकर हथियार डाल दिए और वदना की।

भगवान् ने कहा - 'यह कौन-सा झगडा है महाराज।'

'भन्ते। हम लोग नही जानते?'

'कौन जानता है?'

'सेनापति जानता है।'

यो पूछते-पूछते उपसेनापति से होते-होते अत मे सेवको के बाद किसानो से पता चला कि पानी के कारण झगडा है।

बुद्ध 'महाराज। पानी का क्या मूल्य है?'

'अल्प मूल्य भन्ते।'

'महाराज। क्षत्रिय का क्या मूल्य हे?'

'भन्ते। क्षत्रिय अमूल्य हैं।'

'तो तुम लोगा को उचित नहीं है कि पानी क कारण अमूल्य क्षत्रिया का नाश करो।'

लड़ाई रुक गई। दानो राज्य शाति म सहअस्तित्व का सुख भोगने लगे।

पाच हजार वर्ष के बाद भी क्या हम महज पानी के लिए राज्यो की प्रतिभा, राज्या की प्रीति एव भ्रातृभावना की बलि चढाने की दुष्प्रवृत्ति के शिकार नहीं हा रहे हैं?

कोई शास्ता कभी तो बोले और कहे - 'सौम्यो। तुच्छ मूल्य के लिए अमूल्या की बलि मत चढाओ।'

गरुड की कथा इतिहास बने

अभी अंडा फूटा ही था कि पक्षिराज गरुड प्रचंड ऊर्जा के साथ उड चले। पंखों को उन्होंने झंझा से तौला, आंखों की कोरों ने अमाप आकाश को मापा और हृदय में स्वर्ग से अमृतघट प्राप्ति की महत्त्वाकांक्षा को सजाया। समय कहां? पंजों में गजराजों को दबोचा, विशाल वट वृक्ष की शाखा पर बैठे तो वह टूट गई, गिरि शिखरों पर क्षण भर विश्राम। केवल दीखता था - अमृतघट। वेग से स्वर्ग कांप गया। इंद्र का प्रचंड वज्र श्रीहत। विष्णु से भिडे - विष्णु मुग्ध - गरुड मुग्ध। दोनों में अटूट मैत्री। गरुड विष्णु के सेवक विष्णु के वाहन बने और उनके सिर पर छत्र की तरह छा गए - गरुडध्वज नाम को सार्थक करते। अमृत घट लाए - बंदिनी मां के लिए, पर स्वयं एक बूंद का आस्वाद नहीं। यह है निर्लोभ अनासक्त पुरुषार्थ की अमर गाथा।

गरुड, वैनतेय पक्षिराज गरुड प्रतीक हैं - अदम्य ऊर्जा के, प्रचंड वेग के दुर्दमनीय साहस के, अस्खलित धैर्य और निःसंग महत्त्वाकांक्षा के।

हमारा नवोदित राष्ट्र आज गरुड के वेग से सज्जित है विराट् महत्त्वाकांक्षा के सपने सजाए। समय आ गया है, अब गरुड की कथा - हमारा इतिहास बने। इतिहास के हीरकाक्षरों में हमारी प्रतिभा के उज्ज्वल बिंदु भी अपनी आभा समर्पित करें। इतना ही अलम्।

तुच्छ मूल्य के लिये अमूल्यो की बलि।

एव मे सुत्त - एमा मैने सुना हे।

शाक्य ओर कालिय राज्या के बीच रोहिणी नामक नदी बहती थी, दाना जनपद उसके जल से खेता की सिचाई करते थे। एक बार पानी को लेकर दोना जनपदो के किसान लड पडे। दोनो राज्यो के क्षत्रियगण सेना लेकर अपनी प्रजा की पुकार पर लडाई के मेदान मे उतर आए।

शास्ता उधर से निकले। शाक्य ओर कोलिया ने उनका देखकर हथियार डाल दिए और वदना की।

भगवान् ने कहा - 'यह कौन-मा झगडा हे महाराज!'

'भन्ते! हम लाग नही जानते?'

'कोन जानता है?'

'सेनापति जानता है।'

यो पूछते-पूछते उपसेनापति से होते-होते अत मे सेवका के बाद किसाना स पता चला कि पानी के कारण झगडा हे।

बुद्ध 'महाराज! पानी का क्या मूल्य है?'

'अल्प मूल्य भन्ते!'

'महाराज! क्षत्रिय का क्या मूल्य है?'

'भन्ते! क्षत्रिय अमूल्य हैं।'

'तो तुम लागा को उचित नहीं है कि पानी के कारण अमूल्य क्षत्रियो का नाश करो।'

लडाई रुक गई। दोनो राज्य शाति से सहअस्तित्व का सुख भोगने लगे।

पाच हजार वर्ष क बाद भी क्या हम महज पानी के लिए राज्या की प्रतिभा राज्यो की प्रीति एव भ्रातृभावना की बलि चढाने की दुष्प्रवृति क शिकार नहीं हो रहे हैं?

कोई शास्ता कभी तो बोले ओर कहे - 'सौम्यो! तुच्छ मूल्य के लिए अमूल्या की बलि मत चढाओ।'

गरुड की कथा इतिहास बने

अभी अडा फूटा ही था कि पक्षिराज गरुड प्रचड ऊर्जा के साथ उड चले। पखो को उन्होने झझा से तोला, आखो की कोरो ने अमाप आकाश को मापा और हृदय मे स्वर्ग से अमृतघट प्राप्ति की महत्त्वाकाक्षा को सजोया। समय कहा? पजा मे गजराजो को दबाचा, विशाल वट वृक्ष की शाखा पर बैठे तो वह टूट गई, गिरि शिखरो पर क्षण भर विश्राम। केवल दीखता था - अमृतघट। वेग से स्वर्ग काप गया। इद्र का प्रचड वज्र श्रीहत। विष्णु से भिडे - विष्णु मुग्ध - गरुड मुग्ध। दोनो मे अटूट मैत्री। गरुड विष्णु के सेवक, विष्णु के वाहन बने और उनके सिर पर छत्र की तरह छा गए - गरुडध्वज नाम को सार्थक करते। अमृत घट लाए - वदिनी मा के लिए, पर स्वय एक बूद का आस्वाद नही। यह है निर्लोभ अनासक्त पुरुषार्थ की अमर गाथा।

गरुड, वैनतेय पक्षिराज गरुड प्रतीक है - अदम्य ऊर्जा के, प्रचड वेग के दुर्दमनीय साहस के अस्खलित धैर्य और नि सग महत्त्वाकाक्षा के।

हमारा नवोदित राष्ट्र आज गरुड के वेग से सज्जित है, विराट् महत्त्वाकाक्षा के सपने सजोए। समय आ गया है, अब गरुड की कथा - हमारा इतिहास बने। इतिहास के हीरकाक्षरो मे हमारी प्रतिभा के उजले बिदु भी अपनी आभा समर्पित करे। इतना ही अलम्।

तुच्छ मूल्य के लिये अमूल्यो की बलि।

एव मे सुत्त - ऐसा मैने सुना है।

शाक्य ओर कालिय राज्या के बीच राहिणी नामक नदी वहती थी, दोना जनपद उसके जल से खेता की सिचाई करते थे। एक बार पानी को लेकर दोना जनपदो के किसान लड पडे। दोना राज्यो के क्षत्रियगण सेना लेकर अपनी प्रजा की पुकार पर लडाई के मेदान मे उतर आए।

शास्ता उधर से निकले। शाक्य और कोलिया ने उनको देखकर हथियार डाल दिए और वदना की।

भगवान् ने कहा - 'यह कौन-सा झगडा है महाराज।'

'भन्ते! हम लाग नहीं जानते?'

'कोन जानता है?'

'सेनापति जानता हे।'

या पूछते-पूछते उपसेनापति से हाते-होते अत मे सेवको के बाद किसाना से पता चला कि पानी के कारण झगडा हे।

बुद्ध 'महाराज! पानी का क्या मूल्य है?'

'अल्प मूल्य भन्ते!'

'महाराज! क्षत्रिय का क्या मूल्य है?'

'भन्ते! क्षत्रिय अमूल्य हे।'

'तो तुम लोगो को उचित नहीं है कि पानी के कारण अमूल्य क्षत्रियो का नाश करो।'

लडाई रुक गई। दोना राज्य शाति से सहअस्तित्व का सुख भागने लगे।

पाच हजार वर्ष के बाद भी क्या हम महज पानी के लिए राज्या की प्रतिभा राज्या की प्रीति एव भ्रातृभावना की बलि चढाने की दुष्प्रवृति के शिकार नहीं हो रहे हैं?

कोई शास्ता कभी तो बाले और कहे - 'सौम्या! तुच्छ मूल्य के लिए अमूल्या की बलि मत चढाओ।'

तेरी बात मेरे बैल ने सुनली तो

दूकान के बाहर ग्राहका की भीड लगी थी। तेली सभी को घाणी क ताजा तेल दे रहा था। पर वह कभी-कभी बीच मे उठकर दूकान के पीछ जाता और फिर लाट कर ग्राहका को तेल देन लगता। एक फकीर भी तेल लेने आया था उसने चवन्नी दी और तेल देने को कहा। फकीर ने पूछा, 'आप बीच-बीच म उठकर भीतर क्या करने जाते ह?' तेली ने सहज भाव से उत्तर दिया - 'बात यह है कि - भीतर घाणी चल रही ह बेल उस चला रहा ह मने उसके गले मे घुघरू बाध रखे ह। जब घुघरू बजते रहते हें तो में समझता हू कि वह घाणी के चारा ओर घूम रह है। जब घुघरओ की आवाज नहीं आती तो म समझ जाता हू कि बेल खडा हो गया हे। मैं जाकर डडा लगाकर उसे काम पर जोत देता हू।'

फकीर न यह बात ध्यान से सुनी और तेली की बुद्धिमानी की सराहना की, पर एक बात कहने लगा - 'भैया तेली। मैं एक बात तुम से पूछता हू कि यदि यह बैल खडा हो जाए और खडा खडा गर्दन हिलाकर घुघरू बजाने लगे ता।' तेली घबराया और कहने लगा - 'जा हट, यहा से, तेल भी ले जा और अपनी - चवन्नी भी लेजा। फिर कभी इस दूकान की ओर ताकना तक नही। कहीं तेरी बात मेरे बैल ने सुन ली ता मेरा काम चोपट हा जाएगा।'

क्या इसी तरह साप्रदायिक लागो ने, राजनीतिक दला ने और फिरकापरस्ता ने अपने मतलब क लिए भोले-भाले आदमिया का घाणी का बेल नही बना रखा हे। ये सभी चौकते ह कि इन्हे कही से कोई सच्ची, खरी असली बात सुनने को न मिल जाए। जब कोई खरी बात कहता है तो इतिहास पहल सूली पर चढाता हे और फिर आसू बहाता है। प्रतीक्षा ह - इतिहास घाणी का बैल न बनकर कभी आगे भी तो बढे।

मुफ्त मे एक फल तो बगीचा हजम

ईरान के दयालु बादशाह नोशखाँ एकबार अपने राज्य का दौरा कर रहे थे। मार्ग मे रात हो गई। जगल म डेरा डाला। भोजन बनने लगा तो पता चला कि रसाई भडार मे नमक नहीं हे। 'लूण बिना भोजन पूण' लवण के बिना भोजन आधा अधूरा। एक नौकर दोडा ओर पडास क गाव मे रहने वाली एक बुढिया से बादशाह के लिए नमक माग लाया।

बादशाह को यह बात मालूम हुई। उसने खानसामा को बुलाया ओर पूछा - 'नमक का दाम दे दिया?'

सेवक - 'हुजूर। चुटकी भर नमक का क्या मोल फिर आपके लिए।'

बादशाह नाराज हा गए। झिडकी देकर कहने लगे - 'खबरदार। आग कभी ऐसी गलती न करना। पहला गुनाह माफ। जाओ नमक का दाम दे आओ माफी मागो ओर दड भी दे आआ।' फिर समझाते हुए प्यार से नौशेखाँ कहने लगे - 'सुनो। बादशाह यदि प्रजा के किसी बाग से बिना मूल्य दिए, मुफ्त मे एक फल लेगा ता उसके कर्मचारी प्रजा क बागीचा को भी हजम कर जाएगे।'

तेरी बात मेरे बैल ने सुनली तो

दूकान के बाहर ग्राहका की भीड लगी थी। तेली सभी को घाणी क ताजा तेल दे रहा था। पर वह कभी-कभी बीच मे उठकर दूकान के पीछे जाता और फिर लाट कर ग्राहका का तल देने लगता। एक फकीर भी तल लेने आया था, उसने चवन्नी दी और तेल देने को कहा। फकीर न पूछा, 'आप बीच-बीच मे उठकर भीतर क्या करने जाते ह?' तेली ने सहज भाव से उत्तर दिया - बात यह है कि - भीतर घाणी चल रही है, बल उसे चला रहा हे मन उसके गले मे घुघरू बाध रखे हैं। जब घुघरू बजते रहत हैं तो मैं समझता ह कि वह घाणी के चारा ओर घूम रह है। जब घुघरुओ की आवाज नहीं आती तो मै समझ जाता हू कि बेल खडा हा गया है। में जाकर डडा लगाकर उस काम पर जोत दता हू।'

फकीर ने यह बात ध्यान से सुनी और तेली की बुद्धिमानी की सराहना की, पर एक बात कहन लगा - 'भैया तेली। मैं एक बात तुम से पूछता ह कि यदि यह बैल खडा हो जाए और खडा खडा गर्दन हिलाकर घुघरू बजाने लगे तो।' तली घबराया ओर कहने लगा - 'जा हट, यहा मे तेल भी ल जा और अपनी - चवन्नी भी लेजा। फिर कभी इस दूकान की आर ताकना तक नहीं। कहीं तरी बात मेरे बैल ने सुन ली तो मेरा काम चौपट हा जाएगा।'

क्या इसी तरह साप्रदायिक लोगो ने, राजनीतिक दलो ने और फिरकापरस्ता ने अपन मतलब के लिए भोल-भाल आदमियो को घाणी का बेल नहीं बना रखा है। ये सभी चाहते ह कि इन्हे कहीं से कोई सच्ची, खरी, असली बात सुनने का न मिल जाए। जब काई खरी बात कहता है तो इतिहास पहले सूली पर चढाता हे और फिर आसू बहाता ह। प्रतीक्षा है - इतिहास घाणी का बल न बनकर कभी आग भी ता बढे।

देख कबीरा रोया

गैलानाथ अपनी टोली के साथ जा रहे थे ओर चेला को समझा रहे थे 'हमारी भाषा आर, दुनिया की भाषा आर। इशारे से समझना दुनिया की झूठी बाता के फरेब मे न आना।' इतने म एक आदमी गाया की डोर पकडे जा रहा था। गैलानाथ ने पूछा 'कहो चेल। कौन किससे बधा ह?' एक चल न झट स कहा 'इसम क्या पूछना ह, गाय आदमी से बधी है।' गुरु ने एक डडा फटकारा और कहा, 'वज्र मूर्ख। फिर गृहस्थी की बोली बाल गया। यह आदमी गाय से बधा हे गाय बधी दिखती है पर हे यह आजाद।'

यह कह बाबा आगे बढे और हाथ के त्रिशूल से गाय की डार काट दी। गाय आजाद होकर बेतशाहा दौडी ओर गाय का मालिक गाय के पीछे दोडा। बाबा खिलखिलाकर हसने लगा ओर कहने लगा - 'बोलो अब बोलो, कौन किससे बधा हे?'

देखा जब कोई कहे कि मैंने जमीन खरीदी हे तो समझना - इस आदमी को जमीन ने खरीद लिया हे। जब कोई कह कि हम गायो को पालने वाले गापाल हैं ता समझना - इस आदमी को गाये पाल रही ह। यह बेचारा गाया के बल पर जी रहा ह।

कबीर इसीलिए ता एक बार रो पड थे -

चलती को गाडी कहै, सार वस्तु को खाया।
रगी को नारगी कहे, दख कबीरा रोया॥

चितन मनन

हाजी व गगजी की तलाश

'कौन हा तुम? इधर उधर किस ढूढ रह हा?' आगतुक न कहा - बधु। मैं इसी गाव का हू। पचास वर्ष बाहर रहा अभी लाटा हू। पर यह गाव इतना बदल कैस गया? क्या यहा काई हाजी नहीं काई गगजी नहीं।' गाव क निवासी का इस अजनबी आदमी की बात बतुकी और बेहूदा लगी। इतन म और लाग भी इकट्ठे हा गए।

आगतुक साधु वश में था सभी उसकी बात सुनने लगे। उसन कहना शुरू किया 'भाइया। म यहा स पचास वर्ष पहल बाहर चला गया था। उस समय यह गाव छाटा था पर यहा प्रम ही प्रम का राज्य था। उसका कारण था - एक हाजी और एक गगजी। दाना ने गाव का स्वर्ग बना दिया था। एक काजी था। उसक मन म हज करन की आई। अपनी कमाई स रुपए इकट्ठ किए व हज के लिए रवाना हान के पहल वह गाव भर क लागा स गल मिला। साचा कौन जाने मिलना हो या न हो। जब वह हज करके लौटा तो सारे गाव को कह दिया - 'अब सारा गाव मेरा है। चाहे मौत ही आ जाए, न झूठ बोलूगा और न फरेब करूगा।' इसी तरह एक आदमी गगाजी गया था। वह गगाजी के दर्शन करने वाला और बाहर बैठकर लाटे से स्नान करने वाला आदमी था। अपना नाम उसने गगा रख लिया और लाग 'गगजी' कहकर उसे पुकारते थे।

सारा गाव दो नाम जानता था - हाजी और गगजी। कहीं झगडा हो ता दोना पहुचते प्रेम कराते सुलह कराते। कभी-कभी झगडा गाव के ठाकुर तक पहुचता। ठाकुर दोनो को बुलाकर पूछता दोना जो कह देते-वेद वाक्य थे।

लोग सुन रहे थे विश्वास नहीं कर रहे थे - जैसे यह कोई कहानी है। लागा ने कहा 'क्या बकते हा? अब यह गाव नहीं कस्बा है। हाजी नहीं-हाजिया से गगाजी नहीं - गगजी जैसे गगा स्नान करने वाले लोगा से यह कस्बा भरा है।'

आगतुक आखे फाडकर तलाश करता रहा - कहा है हाजी और गगजी।

अधिकार के शोर मे खोया कर्त्तव्य

'*अधिकार, अधिकार अधिकार*' के सघर्ष के तुमुलनाद स धरता और आसमान जेस फटे जा रह ह चारा आर व्याप्त इस नक्कारखाने मे कहीं कर्त्तव्य की तूती सुनाई भी नहीं दती। तूती की आवाज यदि बीच-बीच मे उठती रह तो कभी-न-कभी भटकता जमाना लौट आवे - असली जगह।

घर की लडाई अब अधिकार से शुरू हाती हे - बाप-बेटे के बीच भाई-भाई के बीच पास-पडास मे यही सघर्ष। कारखाना से लेकर हमार ससद भवन इसी शार से भरे हें जहा अपना पराया कुछ सुनाई नहीं पडता।

याद पडता है - जब हमारी सविधान निर्मात्री सभा मनुष्य के बुनियादी हक की चर्चा कर रही थी और सारे देश म मनुष्य के मौलिक अधिकारा पर वाद-विवाद हा रह थे उस समय बापू कुछ ऐसा-सा कह रहे थे, 'यह शुरुआत ही गलत हो रही है - हमार सविधान का प्रारभ होना चाहिए था - मनुष्य के प्रत्येक नागरिक क, *कर्त्तव्य क्या हैं* - यहा स क्याकि कर्त्तव्य की गोद म अधिकार या सुरक्षित रहते हें जेसे मा की गाद मे उसका बच्चा।' हम मानते हें - शब्द नित्य ह। वे आकाश मे भटक रह हैं तेर रहे हैं।

अधिकारा के कोलाहल म हमने खाया ज्यादा है, पाया बहुत कम ह। कर्त्तव्य हमारा सच्चा स्वार्थ ह यदि सभी कर्त्तव्य का पालन करे तो सभी क सभी अधिकार उन्ह स्वत प्राप्त हागे - अनायास प्राप्त हाग। यही सच्चाई है इस चाह आज परख या कल।

थाडे लाग दूसरा क अनुभवा से सीखत हैं ज्यादातर अपनी अगुली जला-जलाकर सीखते हें - पर उनका क्या कह जा अगुली जलाकर भी सीखते नहीं।

चितन मनन

दो पीढियो की दूरी मे हो - सवाद

युवक विदश से पढकर आया था उमके मन म अपने प्रति अहकार का भाव था आर देश क प्रति हीन भावना थी। युवक न पिता से कहा 'आपका यह धधा मुझे एकदम निकम्मा लगता ह। दिनभर दूकान म बठ रहना ग्राहकों क इतजार म समय काटना ओर तराजू से तोलना।' अनुभवी पिता शात रहा, गीता पढा हुआ नही था, सस्कारी था कहने लगा 'मुझे ता यही काम आता ह। तुम कोई नया काम करो, अवश्य करा। चाहा तो मरा सहयाग ले सकते हो। यदि काम जम जाए आर मुझ भी समझा सको तो म भी वह काम शुरू कर दूगा। यदि किसी कारण स वह काम ठीक न हो पाए तो काई वात नहीं। घर का यह काम तो कहीं गया नहीं। तुम्हार सहयाग स इस नया रूप देने की कोशिश करेगे।'

— यह दा पीढिया की दूरी की उनके टकराने की ओर एक पक्ष की समझदारी से उनके मेल-मिलाप की भाषा है।

दा पीढिया हैं, विज्ञान की तेज रफ्तार से उनकी दूरिया बढ रही ह। यह समस्या ह। इसका समाधान? हा ह समाधान। दोनो म विवाद हे प्रलाप है - पर सवाद नहीं ह। इसी से सताप विषाद आर अवसाद है।

आओ हम विवादी स्वरा का सवादी स्वर बनाकर टूटे हुए जीवन गीत मे नई कडी जाड आर कह -

ताल ताल पर चलो नही लय छूटे जिसमे
तुम न विवादी स्वर छेडो अनजाने इसमे।

- कामायनी।

तुम खाली आये हो या भरे हो

जापान का छोटा सा ध्यान-मठ। एक फकीर योगी बैठा है। उसके चेले बैठे हैं। एक शिष्य बनने ध्यान विधि सीखने जिज्ञासु आया है। उसने अपने को शिष्य बनाने का निवेदन किया।

योगी ने कहा 'शिष्य बनने की बात अभी नहीं। पहले इसे चाय पिलाओ।'

एक चेला गया, उसने लाकर चाय का खाली प्याला दे दिया। दूसरे ने अपने हाथ के चाय से भरे बर्तन में उस प्याले को लबालब भर दिया।

योगी ने तीसरे शिष्य से कहा - 'जाओ चाय लेकर आओ।' वह चाय लेकर आया। योगी - 'देखता क्या है आगतुक के प्याले को भर दे।' वह चाय का बर्तन लेकर आगतुक के पास गया। जिज्ञासु ने निवेदन किया मेरे प्याला तो भरा है इसमें और चाय कैसे आवेगी?'

योगी - 'आहा! मैं समझा अब समझा। तुम्हारा प्याला भरा है इसमें और चाय उडेली नहीं जा सकती?'

आगतुक 'हां गुरुदेव और के लिए जगह कहां?'

योगी - 'लो आ गया अब दीक्षा का समय। मैं पूछता हूं - तुम खाली आए हो या पहले हो भरे हो। यदि खाली हो तो ठहरो और यदि भरे हो तो भागो।'

आगतुक शून्य बना चाय के भरे प्याले को खाली करने में लगा - साथ ही अपने को खाली करता रहा। गुरु ने देखा - एक ओर हाथ में खाली प्याला है तो दूसरी ओर , से रिक्त मन। गुरु योगी ने कहा - 'बस ठहर यहां।'

नींद लेना है — कलियुग

हमारा यह काल - चितन कितना पतनान्मुख ह। पहले सत्ययुग था, फिर हम गिरे - त्रेता आया, फिर नीचे गिर - द्वापर आया। जब कलियुग हैं - यानी गिरावट की चरम सीमा। इससे हम निराश हा जात हैं और जब काई खराब बात हाती ह ता सोचते हं - ऐसा ता हाना ही ह, क्याकि यह तो कलियुग हे।

पर यह तरुण भारत का चितन नहीं ह। याद रखे, युग काइ काल खड नही ह। युग मानव की वृत्ति ह, मानव की प्रवृत्ति ह - इसी कारण एक युग मे चारा युग साथ-साथ चलते ह। यह हमारे सकल्प पर निर्भर ह कि हम अपने का किस युग का निवासी बनाव।

ऐतरेय ब्राह्मण का यह क्रातद्रष्टा ऋषि - हमारा पथ प्रदर्शन करता हम जगा रहा है, बधुओ! हम इसे सुन आर काल चितन की इस विकृति स मुक्त होकर सत्य के सम्मुख, प्रकाश के सम्मुख, अपने को स्थापित कर।

'कलियुग कुछ नही हे, जो साता हे आलसी हे, प्रमादी ह - वही कलियुग ह। जो अकर्मण्यता की नीद छोडकर उठने का तयार है उसी का नाम द्वापर हे। सकल्प कर खडा हो गया - समझो त्रेता आ गया। जो कर्त्तव्य पालन की तत्परता से आगे बढ चला हे यानी चल पडा ह उत्साह पूर्वक चलता ही रहता हे, दुर्गम पथ की परवाह न कर अविराम बढ रहा है - उसी का नाम सत्ययुग ह, कृतयुग हे। अत चलते ही रहा प्रगति पथ पर वढत ही रहो, अविश्रात गति मे।'

"कलि शयानो भवति सजिहानस्तु द्वापर ।
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति कृत सपद्यते चरन्।"
चरेवेति। चरेवति।

समाज सुधार का कटीला पथ

परमहस प्रसन्न मुद्रा म बठ ह। दा नवयुवक आकर अभिवादन करत ह। परमहस मुस्कराते हैं अपने हाथ स दा पुष्प दत हैं।

युवक - 'प्रभो! हम समाज सुधार क काम म लगना चाहते हैं अत आप बताइए हम समाज सुधार क कार्य कस कर क्या करे आर कहा कर?'

परमहस - 'यानी तुम दाना भोजन परासने वाले बनना चाहते हो। पहले यह बताआ यदि भाजन बढिया बना हो और परासने वाले का हाथ गदा हो तो वह भाजन करने वाले के लिए कैसा रहेगा?'

युवक - 'गद हाथा स परोसे जाने पर अच्छा भाजन भी खराब हा जाएगा। भोजन करने वाला के लिए तो वह जहर ही बनेगा।'

परमहस - 'बहुत अच्छा उत्तर दिया। बताओ तुम्हारे हाथ गदे हैं या स्वच्छ हैं?'

युवक - 'हम समझे नहीं।'

परमहस - 'भैया समाज सुधार का काम सोच समझकर करने का है। जैसे परोसने वाले को पहले अपने का स्वच्छ बनना पडता हे हाथा का निर्मल बनाना पडता है। उसी प्रकार समाज सुधारक बनने वाले को पहले अपना सुधार करना पडता है। हदय निर्मल हो यश की आकाक्षा न हो अहकार न हो प्रेम हा त्याग की भावना हो - पहले जाआ तैयारी करा आत्म सुधार की।' युवका को अब पता चला समाज सुधार का पथ कटीला है। पहले आत्मसुधार यही वह दृढ भूमिका हे जहा से समाज सुधार का शुभारभ होता हे। इस दृढ भूमिका के बिना समाज सुधार के सारे प्रयत्न मृगमरीचिका मात्र ह।

बस, लगे रहो लगन से

एक पतली-सी क्षीण जलधारा बह रही ह पर्वत क ऊपरी भाग के एक चट्टानी खड पर। जलधारा पतली क्षीण चट्टान कठार और अडोल। पर जलधारा बह रही ह रात आर दिन म, गर्मी-सर्दी म अधर-उजाले म-सतत बह रही ह। यह क्या हुआ चट्टान टट कर खिसक गई आर जलधारा ह अब प्रसन्न गभीर आर वगपूण। इस परिवर्तन का रहस्य ह - सततता। यह सातत्य योग ह। ध्यान योग ज्ञान याग आर कर्म योग - तीना के अतराल मे साध गला एक याग ह सातत्य योग।

जीवन म हम चाह ़ुछ भी पाना हा चाह लाकिक हो या अला क। धर्म अर्थ, काम आर मोक्ष रूप चारा पुरुषार्थो की सिद्धि के मूल म यही सातत्य याग रहता है।

पर हम जीवन मे गड्ढे खादते ह, कुओं नहीं। एक काम शुरु किया सफलता हाथ नहीं। दूसरा शुरू फिर उकता गए - तीसरा नया शुरू? यो ही बदलते बदलते जीवन खत्म कर देते ह।

पूरे लगते नहीं जब तक धुन न हा, लगन न हा एक नशा न हा - तब तक सिद्धि कहा?

रुद्र का अभिषेक तभी सधता हे जबकि पतली धार निरतर मस्तक पर गिरती रहे। रुद्र को स्नान कराना हो ता घट एक ही क्षण म उडेल दे पर यह रुद्राभिषेक नहीं ता फिर सिद्धि नहीं।

इसी का एक नाम है - अभ्यास। अभ्यास की परिभाषा ह - दीर्घकाल तक निरतर, अविश्रात श्रद्धा, सत्कार व दृढता क साथ - जमे रहना।

तप निरत कुमारी पार्वती के शब्दा म सातत्य योग का यह महोच्चार है —

जन्म कोटि लगि रगर हमारी।
बरउ सभु न त रहउ कुआरी।

सच - समस्या एक भी नही

एक आदमी से पूछा - 'तुम्हारे कितने लडके हैं?' उसने कहा - 'एक है दो है सो है और एक भी नहीं।' फिर रुक कर कहा - आप को लगेगा जैसे कोई पागल बक रहा है ऐसी बात नही। मेरे लडका तो एक है वह राशन दो का खाता है - इसलिए दो है सो जितनी लडाइया करता है - इसलिए सौ है पर जब मैं काम को कहता हू तो काम नहीं आता - इसलिए एक भी नहीं है।'

इस बात के द्वारा आओ हम बात शुरू करे। जीवन मे समस्याए हैं एक है, दो है सो हैं और एक भी नहीं है। यदि हम आज के युग मे किसी से भी बात करे और समस्याओ के सिलसिले की बात करे तो समस्याओ की सभी के पास कभी खत्म न होने वाली सूची है।

सही बात तो यह है कि समस्या एक भी नही है। यदि है तो केवल एक समस्या है वह यह है - सभी चाहते हैं सब अच्छे बने भले बने - केवल खुद 'मै' ही अच्छा न बनू, भला न बनू। इसी कारण समस्याओ का यह अंतहीन अंबार है।

नेता चाहता है जनता अच्छी बने। जनता चाहती है - नेता अच्छा बने। माता-पिता चाहते हैं - बच्चे अच्छे बने पर कोई खुद को अच्छा बनाना नही चाहता।

जब हम दूसरो की तरफ एक अगुली उठाते हैं तो तीन अगुलिया अपनी ओर भी उठती हैं - वे कहती है जरा अपनी ओर भी देखो भीतर झाको। काच के मकान मे रह कर हम सब दूसरो पर ढेला मारने मे लगे हैं।

जब हम कहेगे जरा सतो की भाषा मे यहा जो भी खराबी है इसमे मेरा भी दोष है तब इन समस्याओ का सारा जजाल हवा होने लगेगा। यह जहरीला चक्र टूटेगा फिर लगेगा - एक भी समस्या नहीं है।

कबीर के जैसी अनुभूति चाहे हम न हो पर इसके आसपास कभी-न-कभी भीतर आवाज आयेगी -

'बुरा जो देखन मै चला
बुरा न मिलिया कोय।'

इस आवाज का मतलब है - घनघोर अधेरे को चीर कर पहली उजली सुनहरी किरण का आना।

चितन मनन

सब की मुक्ति मे छिपी मुक्ति

सब दौड रहे हैं प्रथम आने के लिए। कोई दौड रहा है - अर्हत बनने के लिए, निर्वाण के लिए, मुक्ति के लिए। जीवन जैसे केवल पाने के लिए है। कोई रुकना नहीं चाहता मुडना नहीं चाहता झुकना नहीं चाहता - केवल चाहता है अपने को बढाना चरम परम पद पाना। कैवल्य-केवल कैवल्य।

ऐसी घनघोर स्वार्थ केंद्रित व्यक्तिवादी दौड के इस पलायनवादी वातावरण को चीर कर यह कौन है - जो कहता है 'मुझे मुक्ति नहीं चाहिए, इस नीरस मुक्ति को लेकर मैं क्या करूगा। जब तक छोटी सी पिपीलिका (चींटी) से लेकर बडे हस्ती पर्यंत जीवों मे एक भी प्राणी दु ख का अनुभव करता है तब तक मैं मुक्ति नहीं चाहता।'

यह बोधिसत्व है जो महामैत्री और महाकरुणा के लिए है इसलिए इसके 'स्व' की परिधि मे सारा जगत समा गया है। सबकी मुक्ति के बाद-मेरा नंबर सब से पीछे आवे इसके लिए जीवन को एक यज्ञ बनाना होता है।

गीताकार ने कहा **'यज्ञशिष्टाशिन '** यानी सब का मिलने के बाद जो बच जावे उस बचे हुए को खाने वाला संत होता है।

हम भी जरा रुक पीछे मुडकर देखे आगे बढने का आनंद सही है पर कितने-कितने लोग दु खी है गिरे हुए हैं उन्हे आगे बढाने के लिए कभी करे कुछ कर इसमे जीवन की सार्थकता है चाहे तथाकथित सफलता न हो।

विश्वकवि रवि ठाकुर की यह वाणी हमारा पथ-दीप बने -

'वैराग्य साधना की मुक्ति मेरी मुक्ति नही
सौ-सौ बंधनो के बीच मुक्ति साधना-यही मेरी मुक्ति।'

चितन मनन

'द' - एकाक्षरी दिव्य भाषण

देव दानव व मानव एकत्र थे व प्रजापति स माना कर रह थे - 'तुमने यह कैसा ससार बनाया है समस्याओ स भरा।' प्रजापति ने कहा, 'द'। आज तक लाखा भाषण हुए ह अतहीन ह य प्रवचन आर वाग्मिता भरी वक्तृताएँ। पर जब स धरती बनी ह, ऐसा सक्षिप्त, सारगर्भित व एकाक्षरी एक ही भाषण है, अनोखा, दिव्य आर अनुपमेय।

देवताओ ने समझा, 'द' का अर्थ है दम यानी इद्रिय सयम। स्वर्ग आखिर क्या है, परिया का नाचघर डासिग रूम। अत यदि हम सयम रख तो हमारी कोई समस्या नही। दानवा न विचारा - 'द' का अर्थ है दया। ये लडाईखार, हिसक, क्रूर और हत्यारे यदि दया अपना ल ता य भी सुख पाव और दूसर भी सुखी हा। साधारण स्वभाव के मानव ने 'द' के अर्थ का चितन किया विचारा 'द' का अर्थ ह दान। मानव की मूल समस्या है - सग्रह की वृत्ति। वह दिन भर दाड-दौडकर वस्तुआ का पदार्थो का बमतल सग्रह करन म जुटा ह आर परिग्रह की इस दाड म मर जाता ह।

दम दया आर दान य तीन सकारात्मक शब्द हैं, पर हमारी भूल यह है कि हम कह रह हैं - काम क्रोध, लाभ को छाडो। य तीन नकारात्मक शब्द ह। काम छूटता नहीं, इस पर दम या सयम रखा जाव ता यह एक पुरुषार्थ बन जाता ह। क्राध छाडने के बदले यदि दया अपना ल ता क्रोध की क्रूरता खत्म हा जाती है। लाभ क साथ दान आ जावे तो लोभ का विष उतर जाता है।

उपनिषद् कहता है - प्रजापति का यह भाषण प्रतिवर्ष मेघमालाए विद्युत् ध्वनि म सुनाती है - द-द-द की ध्वनि मे दाम्यत, दयध्वम् दत्त की घोषणा म। काश हम सुन पाव।

अडिग महामात्य चाणक्य

समिधाओं के भार से उटज झुका हुआ है। कुटिया की कुड्या (दीवार) जीर्ण है। शिष्यों का लाया थोड़ा सा भिक्षान्न रखा है। सूखे गोमय को तोड़ने के लिए प्रस्तर खंड कोने में है। ताड़पत्रीय और भूर्जपत्रीय ग्रंथ ग्रथित है बंधे हैं।

यह है गुप्त साम्राज्य के महामात्य आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य की संपदा जो अपनी अकिंचनता में महामहिम है।

चाणक्य इधर से उधर चक्रमण कर रहे हैं विचारमग्न घूम रहे हैं। शिष्य नई-नई सूचनाएं ला रहे हैं - किसी के भागने की किसी षड्यंत्र की अंतरंग व्यक्ति के धोखा देने की और पकड़े गए लोगों के देश निकाले की सूचनाएं, जिनमें केवल निराशा है उदासी है और भावी अपशकुन है।

चाणक्य अडिग हैं चेहरे पर गंभीर भाव है चिंतन मुद्रा है पर कहीं चिंता की वक्र रेखाएँ नहीं हैं। शिष्य परेशान हैं 'गुरुदेव! सब काम बिगड़ रहा है।'

चाणक्य 'सबको जाने दो सब कुछ जाने दो। मत डरो। जब तक मेरे पास मेरे साथ में बड़े-बड़े सम्राटों की चतुरंगिणी चमू (सेना) को थर-थर कंपाने की मेधा-शक्ति है तब तक समझो कुछ भी नहीं गया।'

ऐसे आत्मविश्वास से उद्दीप्त अकंप वाणी जिस राष्ट्र के पास हो, वहां का युवक निराश हो यह अनुचित है।

यह मेधा यह बुद्धि यह प्रतिभा या यह प्रज्ञा—यही हमारी हमारे समाज की विपुल संपदा है यही जीवन पथ का पाथेय है। सभी काम्य-प्राप्य हैं।

'द' - एकाक्षरी दिव्य भाषण

देव दानव व मानव एकत्र थे व प्रजापति से मानो कह रहे थे 'तुमने यह कैसा संसार बनाया है समस्याओं से भरा।' प्रजापति ने कहा 'द'। आज तक लाखों भाषण हुए हैं अंतहीन हैं ये प्रवचन और वाग्मिता भरी वक्तृताएँ। पर जब से धरती बनी है ऐसा संक्षिप्त सारगर्भित व एकाक्षरी एक ही भाषण है, अनोखा, दिव्य और अनुपमय।

देवताओं ने समझा 'द' का अर्थ है, दम यानी इंद्रिय संगम। स्वर्ग आखिर क्या है परियों का नाचघर डांसिंग रूम। अतः यदि हम संयम रखें तो हमारी कोई समस्या नहीं। दानवों ने विचारा - 'द' का अर्थ है दया। ये लड़ाईखोर हिंसक, क्रूर और हत्यारे यदि दया अपना लें तो ये भी सुख पावें और दूसरे भी सुखी हों। साधारण स्वभाव के मानव ने 'द' के अर्थ का चिंतन किया विचारा 'द' का अर्थ है दान। मानव की मूल समस्या है - संग्रह की वृत्ति। वह दिन भर दौड़-दौड़कर वस्तुओं का पदार्थों का बेमतलब संग्रह करने में जुटा है और परिग्रह की इस दौड़ में मर जाता है।

दम दया और दान ये तीन सकारात्मक शब्द हैं, पर हमारी भूल यह है कि हम कह रहे हैं - काम क्रोध लोभ को छोड़ो। ये तीन नकारात्मक शब्द हैं। काम छूटता नहीं इस पर दम या संयम रखा जावे तो यह एक पुरुषार्थ बन जाता है। क्रोध छोड़ने के बदले यदि दया अपना लें तो क्रोध की क्रूरता खत्म हो जाती है। लोभ के साथ दान आ जावे तो लोभ का विष उतर जाता है।

उपनिषद् कहता है - प्रजापति का यह भाषण प्रतिवर्ष मेघमालाएं विद्युत् ध्वनि में सुनाती हैं - द-द-द की ध्वनि में दाम्यत दयध्वम् दत्त की घोषणा में। काश हम सुन पावें।

अडिग महामात्य चाणक्य

समिधाआ के भार से उटज झुका हुआ हे। कुटिया की कुड्या (दीवार) जीर्ण ह। शिप्या का लाया थाडा सा भिक्षान्न रखा हे। सूख गामय को तोडने क लिए प्रस्तर खड कोन म ह। ताडपत्रीय और भूर्जपत्रीय ग्रथ ग्रथित ह बध ह।

यह ह गुप्त सामाज्य क महामान्य आचार्य विष्णुगुप्त चाणक्य की सपदा जा अपनी अकिचनता म महामहिम ह।

चाणक्य इधर से उधर चक्रमण कर रह ह विचारमग्न घूम रह ह। शिप्य नई-नइ सूचनाए ला रह हैं - किसी क भागन की किसी पड्यत्र की अतरग व्यक्ति क धाखा देने की आर पकड गए लागा के देश निकाले की सूचनाए, जिनम केवल निराशा ह उदासी हे आर भावी अपशकुन है।

चाणक्य अडिग ह चेहरे पर गभीर भाव ह चितन मुद्रा हे, पर कहीं चिता की वक्र रेखाएँ नहीं हें। शिप्य परेशान हें 'गुरुदेव। सब काम बिगड रहा है।'

चाणक्य 'सबका जाने दा सब कुछ जान दा। मत डरा। जब तक मेरे पास मेर माथे म चड-चड समाटा की चतुरगिणा चमू (सना) को थर-थर कपान की मेधा-शक्ति ह तब तक समझो कुछ भी नहीं गया।'

एम आत्मविश्वास से उद्दीप्त अकप वाणी जिस राष्ट्र के पास हा वहा का युवक निराश हो यह अनुचित ह।

यह मेधा यह बुद्धि यह प्रतिभा या यह प्रज्ञा—यही हमारी हमार समाज की विपुल मपदा है यही ज । पथ का पाथेय है। सभी काम्य-प्राप्य हैं।

क्या प्रेम मे गिना जाता है।

तीन चार गावा के बीच म एक कुआ था। पनिहारिन सुबह-शाम पानी भरने आया करती थीं। वहीं एक साधु कुए क पास वाले पीपल के नीचे माला फेरता रहता था। साधु निर्लोभ था सच्चा था उसका न किसी स लेना आर न किसी से दना। रात दिन भजन म लगा रहता। गाव का कोई न कोई भक्त उसे भोजन द जाता वह प्रभु का प्रसाद समझ कर ग्रहण करता। भोजन आ जाता वह प्रभु का धन्यवाद देता। नहीं आता तो भी वह धन्यवाद दता।

एक दिन वह कुए क पास गया अपने कमडलु म पानी भरने के लिए। दो पनिहारिन पानी भर रही थीं। एक ने पूछा 'तुम अपने प्रियतम से कितनी बार मिली हो?' दूसरी ने हसते हुए उत्तर दिया 'बावली। क्या प्रेम म गिना जाता ह?' साधु न इतना ही सुना 'क्या प्रेम म गिना जाता ह? वह ठिठक कर ठहर गया अपना कमडलु नीचे रखकर उलटे पाव पीपल के पास लौट आया। उसके कानो म आवाज गूज रही थी 'क्या प्रेम म गिना जाता है।' वह सोचने लगा 'म गिनता हू, आज इतनी माला फेरी इतनी फेरी यह तो दिखावा ह धोखा ह। प्रेम है यदि सच्चा प्रेम ह तो फिर गिनती कैसी।' यह सोचकर उसने माला फेक दी। वह लौटकर पानी लेने आया और पनिहारिन से कहने लगा – 'देवी। तुम मेरी गुरु हो तुमने ठीक कहा – प्रेम मे गिनती कैसी।'

इसाफ नही — चाहिये रहम

एक चट्टान पर एक फकीर हाथ म तसबीह लकर अल्लाह क इश्क म मगन रहता था। चारा आर क्या हा रहा है इससे बेखबर और सदा अपन म डूबा। हम वहा ह, जहा स हमको हमारी भी खबर नही आती।

एक बार आसमान से आवाज आई। 'बदे! क्या चाहता है? इसाफ या रहम।' फकीर ने जवाब दिया 'या खुदा! मैं इसाफ चाहता हू।' इतने मे कुछ अचानक घटा। वह चट्टान नीचे से खिसकी और फकीर के ऊपर बैठ गई। वह फकीर चिल्लाया 'यह अधेरा कैसा – परवरदिगार।' आसमान स आवाज सुनाइ दी – 'तुमन इसाफ चाहा था, उसी का एक नमूना। इसाफ का यही तकाजा है जितने समय तू चट्टान पर बैठा है उतने समय यह तुम पर चढी रहेगी।' वह फकीर किलबिलाया अपने घमड पर पछताया आर अर्ज करने लगा 'करीम! मुझे इसाफ नहीं चाहिए। मुझे रहम चाहिए – रहम।' चट्टान नीचे आ गिरी। यदि ईश्वर न्याय करने लगे तो कभी किसी का उद्धार नहीं हो सकता। अत हम करुणा सागर भगवान से हमशा करुणा की एक बूद के लिए प्रार्थना करते हैं। करणा की एक बूद ही हमारे उद्धार क लिए अलम् ह काफी है।

क्या प्रेम मे गिना जाता है!

तीन चार गावा के बीच मे एक कुआ था। पनिहारिन सुबह शाम पानी भरन आया करती थीं। वहाँ एक साधु कुए क पास वाले पीपल के नीचे माला फरता रहता था। साधु निर्लोभ था, सच्चा था, उसको न किसी स लना आर न किसी मे देना। रात-दिन भजन म लगा रहता। गाव का काई न कोई भक्त उस भोजन दे जाता वह प्रभु का प्रसाद समझ कर ग्रहण करता। भाजन आ जाता वह प्रभु का धन्यवाद देता। नही आता, ता भी वह धन्यवाद देता।

एक दिन वह कुए क पास गया अपन कमडलु म पानी भरने के लिए। दो पनिहारिने पानी भर रही थी। एक न पूछा, 'तुम अपने प्रियतम स कितनी बार मिली हो?' दूसरी ने हसते हुए, उत्तर दिया 'बावली! क्या प्रम म गिना जाता है?' साधु न इतना ही सुना 'क्या प्रम म गिना जाता ह? वह ठिठक कर ठहर गया अपना कमडलु नीचे रखकर उलटे पाव पीपल के पास लाट आया। उसके कानो म आवाज गूज रही थी 'क्या प्रम म गिना जाता ह।' वह सोचन लगा 'म गिनता हू, आज इतनी माला फरी इतनी फरी, यह ता दिखावा ह, धाखा ह। पेम है यदि सच्चा प्रेम ह ता फिर गिनती कैसी।' यह साचकर उसने माला फक दी। वह लाटकर पानी लेने आया और पनिहारिन स कहन लगा - 'देवी! तुम मेरी गुरु हो, तुमन ठीक कहा - पेम म गिनती कैसी।'

क्षणभर का प्रमाद भी घातक

भगवान् कृष्ण ने गाडीवधारी अर्जुन स कहा 'पार्थ। परतप। आज का कुरक्षेत्र का युद्ध भयकर है। पितामह भीष्म की भीषण प्रतिज्ञा सामन है।' अर्जुन ने देखा आज कृष्ण म विशेष उत्साह है और किकिणीक रथ क चारा अश्व ग्लाहक मघपुष्प शव्य और सुग्रीव उत्कर्ण मुद्रा म विशेष युद्ध क लिए तेयार हें। लगता है, भगवान् ने गत भर जाग कर घाडा के शल्य निकाले ह आर हाथा से सहलाया है और पीताम्बर की झाली से प्यार से दाना दिया हे।

अर्जुन न अकम्प स्वर म उत्तर दिया 'प्रस्तुत हू, उद्यत हू मधुसूदन।'

प्रलयकर युद्ध का दृश्य था। भीष्म पितामह तरुणा से भी बढकर प्रहार पर पहार कर रहे थे - शर वर्षा से आकाश ढक गया था। कृष्ण का सारथ्य आज नए कौशल से चमक रहा था।

अर्जुन जी-जान से लड रहा था। ललाट पर पसीना आ गया। अर्जुन ने अपने दाहिने हाथ की तर्जनी अगुली से स्वेदकण पोछे - केवल क्षणार्द्ध - आधे क्षण के लिए। इतने मे भीष्म ने समर भूमि को शवा से पाट दिया। कृष्ण ने रथ का सभाला आर कहा - अर्जुन। क्या हा रहा है?' अर्जुन हतप्रभ हाकर इतना ही कह सका 'भगवान् पसीना मात्र पाछने का विलब हुआ।'

कृष्ण ने कहा 'क्षण केसा क्षण एक क्षण के प्रमाद ने आज के सारे श्रम को व्यर्थ कर दिया पार्थ।'

छाया मे आना छाया मे जाना

श्रेष्ठी का कार्यक्रम गाव स कुछ दूरी पर था। अपनी दूरदर्शिता स साधना क समुचित सयोजन म सात पीढी तक न टूटन वाली अर्थ व्यवस्था कर दी थी।

अतिम समय निकट जान अपने लाडले इकलाते बेट का पास बुलाया और नसीहत दी - 'बेटे! कार्यक्षेत्र का जाओ तब छाया म जाना व छाया मे ही वापस आना।'

श्रेष्ठी गोलोक चले गए। बेटे न पिता की अतिम नसीहत को अपन प्रति अगाध स्नेह समझा। दूसरे दिन स ही तबू तानन वाला का बुला कर अपने घर से कार्यक्षेत्र तक पूरे रास्ते भर तबू तनवा कर छाया करने का आदेश द दिया।

एक भल सयान राहगीर ने जब तबुआ की लबी कतार देखी तो समझा शायद किसी राजे-महाराजे क स्वागत म कुछ सजावट हो रही होगी। मलग्न लागो से पूछा तो श्रेष्ठी के लडके के आदेश की बात कही।

राहगीर आश्चर्य चकित-सा श्रेष्ठी के लडके के पास पहुचा। तबू व्यवस्था का कारण पूछा। लडके न पिता की अतिम नसीहत दोहराते हुए कहा कि - पिताजी ने छाया म जान और छाया म जाने का आदेश दिया था। अत आज्ञा का पालन कर रहा हू।

राहगीर हसा - बोला 'भाई! तुम्हारे पिताजी का छाया म जान और छाया म आने के आदेश का अर्थ यह था कि सूर्य उगने के पहले कार्यक्षेत्र पहुच जाना व सूर्य अस्त होने पर घर आना।' लडके की समझ म आ गया।

बात की सूझ (समझ) और बूझ (सतसग) स ही तो सूझ-बूझ बनती है।

क्षणभर का प्रमाद भी घातक

भगवान् कृष्ण ने गाडीवधारी अर्जुन से कहा, 'पार्थ। परतप। आज का कुरक्षेत्र का युद्ध भयकर हैं। पितामह भीष्म की भीषण प्रतिज्ञा सामने ह।' अर्जुन ने देखा, आज कृष्ण म विशेष उत्साह हैं और किकिणीक रथ के चारा अश्व बलाहक मघपुण्य शैब्य और सुग्रीव उत्कर्ण मुद्रा म विशष युद्ध के लिए तैयार हैं। लगता है भगवान् ने रात भर जाग कर घाडा के शल्य निकाले हैं और हाथा से सहलाया हे और पीताबर की झाली से प्यार स दाना दिया ह।

अर्जुन न अकम्प स्वर म उत्तर दिया 'प्रस्तुत हू, उद्यत हू - मधुसूदन।'

प्रलयकर युद्ध का दृश्य था। भीष्म पितामह तरुणा से भी बढकर प्रहार पर प्रहार कर रहे थे - शर वर्षा से आकाश ढक गया था। कृष्ण का सारथ्य आज नए कौशल मे चमक रहा था।

अजुन जी-जान स लड रहा था। ललाट पर पसीना आ गया। अर्जुन ने अपने दाहिने हाथ की तर्जनी अगुली से स्वेदकण पाछे - केवल क्षणार्द्ध - आधे क्षण क लिए। इतन मे भीष्म ने समर भूमि को शवा से पाट दिया। कृष्ण न रथ को सभाला और कहा - 'अर्जुन। क्या हो रहा है?' अर्जुन हतप्रभ होकर इतना ही कह सका 'भगवान् पसीना मात्र पाछन का विलब हुआ।'

कृष्ण ने कहा 'क्षण कैसा क्षण एक क्षण के पमाद ने आज क सारे श्रम को व्यर्थ कर दिया पार्थ।'

आप तो अभी मुक्त

दो तपस्वी एक वन खड म तपस्या कर रहे थे। एक पीपल क नीचे वैठा था - पद्मासन लगाए। दूसरा वैठा था वडतल वीरासन की मुद्रा म। रात-दिन, गर्मी-सर्दी वर्षा-आधी सभी म वे ममत्व युद्धि थ।

एक बार इधर से देवर्षि नारद निकल। वीणा की मधुर झकार और हरे राम से वन प्रदश सजीव हा रहा था। नारदजी पीपल के नीच वठे तपस्वी के पास रुक तपस्वी ने नारद का पहचाना आर कहा 'देवर्षे। इधर किधर?' नारद-'बेकुठ लोक जा रहा हू, विष्णु से मिलने साचा जरा इधर भी चक्कर लगा लू।' तपस्वी ने कहा - 'कृपालु! मेरा भी एक काम कर द। आप विष्णु से यह पूछ कर आवे कि मुझ मुक्ति कब मिलगी?' नारदजी ने कहा 'अवश्य - पृछकर आपको सूचित कर दूगा।' दूसरे तपस्वी ने भी यही जानन के लिए नारद स प्रार्थना की।

एक वर्ष बाद नारदजी लोट आए। पीपल के नीचे तपस्या करने वाल तपस्वी से नारदजी ने कहा 'हे यागिराज! मैं भगवान् से पूछ आया हू। उन्हान कहा है कि आप के सामन जा इमली का पेड ह न उसम जितने पत्ते ह, उतने जन्म यदि आप तपस्या करते रह ता आपका मुक्ति मिल सकगी। वह तपस्वी बहुत आनदित हाकर कहने लगा - 'नारदजी इस शुभ सवाद के लिए मैं आपके प्रति ऋणी हू, मुक्ति जसी दुर्लभ वस्तु मुझे इतने ही जन्मा क तप से प्राप्त हा जाएगी यह तो बहुत ही सस्ता सौदा है।' नारदजी इसके धैर्य को दखकर कहने लगे 'धन्य ह आप का धैर्य। आप तो अभी मुक्त हो गए, दूसर क्षण की भी जरूरत नहीं'।

दूसर बड तले बैठे तपस्वी को नारद जी ने यह बताया कि आपकी मुक्ति इस जन्म म ता नहीं, पर, अगल जन्म म अवश्य हागी। वह निराश ही नहीं हताश हो गया। झोली डडा उठा कर घर की ओर चलता बना।

याद रखने की बात दो, भूलने की दो।

एक सन्यामी थे। बड भारी विद्वान्। वेद, पुगण शास्त्र इतिहास - सभी म पारगत। ज़ालते ता ऐमा लगता - जैसे ज्ञान की गगा बह रही ह। सुनन वाले माहित हो जात। पर समझ नहीं पात कि व क्या कह रहे हैं। सभी प्रशसा करते पर किसी का यह याद नहीं रहता कि सुना क्या ह। एक दिन वे कहने लगे - अपन शिष्य से - 'बालते-बोलते वर्षो बीत गए, न सुनने वाले थके आर न मैं थका। अब मान लेने की इच्छा ह।'

शिष्य न पैरा पर पडकर प्रार्थना की कि महाराज! अब की बार एमा कहिए कि लाग - सभी लाग - आप की बात याद रखे और उनको फिर कुछ सुनने की जरूरत न रहे। सन्यासी अपने शिष्य की बात सुनकर प्रसन्न हुए आर कहने लगे - 'मेरे मान लन का आर अतिम प्रवचन का एलान कर दा।'

यह जानकर चारा ओर से दूर-दूर से लोग आने लगे। इस बार सन्यासी ने अपनी जीवन का सबसे छाटा प्रवचन दिया। 'मेरी आत्माओ। मने चार लाख बाल पढ, पर मेरे हाथ कुल चार बात आई। जिनम दा याद रखने की आर दो भूलन की। याद रखने की दा बाते है - मालिक आर मात। और कुछ याद न रखना।

दो बात भूलने की ह - सदा भूलने की -

अपनी नकी भूलत रहा दूसरे की बदी भूलत रहा।

यह कह सन्यासी मान म चले गए। इस दिव्य भाषण के नशे म झूमते लाग अपने अपन घरा को लौट गए।

आप तो अभी मुक्त

दो तपस्वी एक वन खंड में तपस्या कर रहे थे। एक पीपल के नीचे बैठा था - पद्मासन लगाए। दूसरा बैठा था बड़तल वीरासन की मुद्रा में। रात-दिन, गर्मी-सर्दी वर्षा-आंधी सभी में वे समत्व बुद्धि थे।

एक बार इधर से देवर्षि नारद निकले। वीणा की मधुर झंकार और हरे राम से वन प्रदेश सजीव हो रहा था। नारदजी पीपल के नीचे बैठे तपस्वी के पास रुके, तपस्वी ने नारद को पहचाना और कहा 'देवर्षे! इधर किधर?' नारद-'बैकुंठ लोक जा रहा हूं, विष्णु से मिलने सोचा जरा इधर भी चक्कर लगा लूं।' तपस्वी ने कहा – 'कृपालु! मेरा भी एक काम कर दें। आप विष्णु से यह पूछ कर आवें कि मुझे मुक्ति कब मिलगी?' नारदजी ने कहा 'अवश्य - पूछकर आपको सूचित कर दूंगा।' दूसरे तपस्वी ने भी यही जानने के लिए नारद से प्रार्थना की।

एक वर्ष बाद नारदजी लौट आए। पीपल के नीचे तपस्या करने वाले तपस्वी से नारदजी ने कहा, 'हे योगिराज! मैं भगवान् से पूछ आया हूं। उन्होंने कहा है कि आप के सामने जो इमली का पेड़ है न उसमें जितने पत्ते है, उतने जन्म यदि आप तपस्या करते रहे तो आपको मुक्ति मिल सकेगी। वह तपस्वी बहुत आनंदित होकर कहने लगा – 'नारदजी इस शुभ संवाद के लिए मैं आपके प्रति ऋणी हूं, मुक्ति जैसी दुर्लभ वस्तु मुझे इतने ही जन्मों के तप से प्राप्त हो जाएगी यह तो बहुत ही सस्ता सौदा है।' नारदजी इसके धैर्य को देखकर कहने लगे 'धन्य है आप का धैर्य। आप तो अभी मुक्त हो गए, दूसरे क्षण की भी जरूरत नहीं'।

दूसरे बड़ तले बैठे तपस्वी को नारद जी ने यह बताया कि आपकी मुक्ति इस जन्म में तो नहीं, पर अगले जन्म में अवश्य होगी। वह निराश ही नहीं हताश हो गया। झोली डंडा उठा कर घर की ओर चलता बना।

याद रखने की बात दो, भूलने की दो।

एक सन्यासी थ। बडे भारी विद्वान्। वेद पुराण शास्त्र इतिहास - सभी म पारगत। ब्रालत ता एसा लगता - जेस ज्ञान की गगा बह रही हे। सुनने वाले माहित हा जात। पर ममझ नहीं पाते कि वे क्या कह रहे ह। सभी प्रशसा करते पर किसी का यह याद नहीं रहता कि सुना क्या ह। एक दिन व कहन लग - अपन शिष्य स - 'बालते-बालते वर्षो बीत गए, न सुनन वाल थक और न में थका। अब मौन लेने की इच्छा ह।'

शिष्य ने पेरा पर पडकर प्रार्थना की कि महाराज! अन्न की बार ऐसा कहिए कि लोग सभी लाग - आप की बात याद रखे और उनको फिर कुछ सुनने की जरूरत न रहे। सन्यासी अपने शिष्य की बात सुनकर प्रसन्न हुए आर कहन लग - 'मर मान लेन का आर अतिम प्रवचन का एलान कर दा।'

यह जानकर चारा आर स दूर-दूर से लोग आन लगे। इस बार सन्यासी ने अपनी जीवन का सबमे छाटा पवचन दिया। 'मेरी आत्माओ। मने चार लाख याल पढे पर मरे हाथ कुल चार वाते आई। जिनमे दो याद रखने की आर दा भूलने की। याद रखने की दो बाते है - मालिक आर मात। आर कुछ याद न रखना।

दो ब्रात भूलने की ह - सदा भूलने की -

अपनी नकी भूलत रहा दूसरे की बदी भूलते रहो।

यह कह सन्यासी मोन मे चले गए। इस दिव्य भाषण के नशे मे झूमते लाग अपने-अपने घरा का लौट गए।

आप तो अभी मुक्त

दो तपस्वी एक वन खंड में तपस्या कर रहे थे। एक पीपल के नीचे बैठा था - पद्मासन लगाए। दूसरा खड़ा था बडतल वीरासन की मुद्रा में। रात-दिन, गर्मी-सर्दी वर्षा-आंधी सभी में वे समत्व बुद्धि थे।

एक बार इधर से देवर्षि नारद निकले। वीणा की मधुर झंकार और हरे राम से वन प्रदेश सजीव हो रहा था। नारदजी पीपल के नीचे बैठे तपस्वी के पास रुके, तपस्वी ने नारद को पहचाना और कहा 'देवर्षे! इधर किधर?' नारद-'बैकुंठ लोक जा रहा हूं, विष्णु से मिलने सोचा जरा इधर भी चक्कर लगा लूं।' तपस्वी ने कहा - 'कृपालु! मेरा भी एक काम कर दें। आप विष्णु से यह पूछ कर आवें कि मुझे मुक्ति कब मिलेगी?' नारदजी ने कहा, 'अवश्य - पूछकर आपको सूचित कर दूंगा।' दूसरे तपस्वी ने भी यही जानने के लिए नारद से प्रार्थना की।

एक वर्ष बाद नारदजी लौट आए। पीपल के नीचे तपस्या करने वाले तपस्वी से नारदजी ने कहा 'हे योगिराज! मैं भगवान् से पूछ आया हूं। उन्होंने कहा है कि आप के सामने जो इमली का पेड़ है न उसमें जितने पत्ते हैं, उतने जन्म यदि आप तपस्या करते रहे तो आपको मुक्ति मिल सकेगी। वह तपस्वी बहुत आनंदित होकर कहने लगा - 'नारदजी इस शुभ संवाद के लिए मैं आपके प्रति ऋणी हूं मुक्ति जैसी दुर्लभ वस्तु मुझे इतने ही जन्मों के तप से प्राप्त हो जाएगी यह तो बहुत ही सस्ता सौदा है।' नारदजी इसके धैर्य को देखकर कहने लगे 'धन्य हो, आप का धैर्य। आप तो अभी मुक्त हो गए, दूसरे क्षण की भी जरूरत नहीं'।

दूसरे खड़े रहने वाले तपस्वी को नारद जी ने यह बताया कि आपकी मुक्ति इस जन्म में तो नहीं, पर अगले जन्म में अवश्य होगी। वह निराश ही नहीं हताश हो गया। झोली डंडा उठा कर घर की ओर चलता बना।

चाहे धीमी चाल से चले — चलते रहे

प्रश्न न कीडी का हैं आर न कुजर का - मत कबीर न दाना का एक पलडे पर रख दिया 'साई क सब जीव हैं कीडी कुजर दाय।' कीडी-चींटी कितनी छाटी क्षुद्रतम आर कुजर-हाथी चलता फिरता पहाड।

प्रश्न ह - चलन का काम करन का। चाटी पहाडा क शिखर पर अभय चढ जाती ह और बड-बडे हाथी नीच लुढक जाते हैं।

कहावत हे - गरुड भी यदि न चले न उडे ता पडा-पडा एक कदम भी आगे नहीं बढ सकता। 'अगच्छन् वेनतयोपि पदमेक न गच्छति।' पर यदि कीडी चलती रहे चलती रहे ता कहा कश्मीर और कहा कन्याकुमारी - दाना का माप सकती ह। कीडी - कश्मीर और कन्याकुमारी एकाकार। यह है - निरतर सतत चलते रहन का याग यानी सातत्य याग जा ज्ञान याग ध्यान याग आर भक्ति याग क बराबर न सही, पर इतना कम भी नहा।

एक कहावत हे - 'तुम आलसी हो प्रमादी हा सुस्त हो - जाओ - चींटी के पास।' श्रम की अजस्र महिमा के प्रकाश से प्रगति का सारा इतिहास प्रभामय है।

चाह धीमी चाल से चल बस चलते रह - अविराम अनथक - यही मानव जाति की उपलब्धि की अकथ कहानी ह। चाल धीमी हा पर दृढ हो लक्ष्य भेदी हो शुभ की आर हो ओर हो सधी हुई अकम्प यात्रा।

श्रद्धा का भी शोषण

एक ढोंगी था। पुजारी का धधा अपना बठा। माचा, कमाई का यह राज-माग है।

पुजारी रात क समय छोटे-छोटे गाल मटोल पत्थग म गाफण चला कर खेत मे पक्षियो को उडाता और सुबह उन्हे जाड कर शालग्राम की मूर्ति बनाकर ऊपर छत्रमुकुट पहना कर पूजा अर्चना करता।

एक दिन गाव के ठाकुर जल्दी पा फटन के जरा पहले दशन करने का गए। मूति न देख कर पूछन लगे -

'दव तो दीसें नहीं पडी दीस पाघा।
अर अजाग भखडा! पगा किणर लागा।

अर! निकम्म भाड त्रन पुजारी! यहा दव ता दिखाइ नहीं दते है। केवल पगडी दीख रही है। बता किसक चरणा म अपना प्रणाम कर।' पर पुजारी कुशल था। दखा, बात बनाने से गाडी चलगी नहीं। उसन साफ-साफ कहा -

'थे तो ठाकरा भोला घणा में यू ही चलाऊ काम।
राते बाहू गोफणा दिन मे सालिगराम॥'

-- ह ठाकुर साहव! आप ता सीधे सरल हैं। मैं या ही अपना काम निकाल रहा हू। रात का इनको गाफण म चलाता हू। और दिन म शालग्राम बना कर श्रद्धा का लूटता हू।

ठाकुर इस नग्न सच्चाई से रीझ कर शात भी हा सकते हैं और नाराज भी।

पुरानी यह बात - क्या आज क सदर्भ म सही नहीं है? लाग या ही धार्मिक न हाते हुए भी धर्म क बहान अपना उल्लू सीधा करने म लगे हैं और जनता की पवित्र श्रद्धा भावना का दाहन करते हैं।

ऐ उदास घबराए इंसान!

ऐ निराश उदास घबराए इसान! तू निराश न हो। तर भीतर ईश्वर की विभूति ह खुदा का नूर ह। अनत अनत शक्तिया का निवास है।

मन का शात कर। भीतर छिप खजान का सभाल। हाथा की मुट्ठिया बाध माथे का गर्व स ऊचा कर। पैरा म तूफान भर ओर चल पड। यह रास्ता जा टेढा-मेढा है - चलने पर सीधा हो जाएगा। गरजते बादल तेरी जीत के नगारे बनगे। बिजली तुम्हारी विजय पताका बनेगी। और ये सागर-गा पद से बने गड्ढ स अधिक नहीं। तरी प्रतिज्ञा के सामने ये पहाड झुक जावेगे।

तू अगस्त्य ह चाहे घटयानि सही - पर सागर का तीन चुल्लू म पी सकता ह। तू हाड मास का पुतला नहीं - एक सकल्प ह। जब सकल्प जगेगा ता सारी विपत्तिया-सफलता की सीढिया म बदल जाएगी। यह धूलि तरे लिए चदन बनेगी। पथ क पत्थर - कामल कमल की पखुरिया बन तेरे पथ मे बिछ जावेगे।

महावीर का शाश्वत स्वर तेरा पथ दीप बने - 'प्रत्येक मनुष्य मे अनत ज्ञान अनत बल अनत दर्शन और अनत आनद ह।' भगवान् शकराचार्य की वाणी का चरितार्थ करना हे - 'जीव जीव नहीं - शिव ह। साक्षात् शिव।'

सुनने के सात सोपान

इस युग में प्रवचनों की भरमार है। लगता है कहीं गहरा घाव है। इस घाव की दवा न विज्ञान के पास है और न दवाई के पास। प्रवचन हैं वहां श्रोता हैं, श्रवण है। प्रश्न है - श्रवण - केवल कानों से सुनना मात्र नहीं है। सुनना एक कला है सर्वांग सुंदर कला। स्मरण रहे खेती केवल क्यारी में बीज डालना मात्र नहीं है, वह फसल के पकने तक की प्रक्रिया है।

सुनना सीखें, सुनने के सात सोपान हैं। फिर आठवीं मंजिल पर है - सिद्धि। सुनने की निष्पत्ति।

सुनने का पहला बिंदु है - १ शुश्रूषा। शुश्रूषा का अर्थ है - सुनने की इच्छा। सुनने की इच्छा नहीं है यों ही लोग भीड़ बनाते हैं - दिखाने के लिए, अपनी इज्जत बढ़ाने के लिए और समाज में रुतबा हासिल करने के लिए। २ श्रवण - कानों से सुनना - अच्छी तरह सुनना एकाग्र होकर सुनना। ३ ग्रहण - कान के बाद अब मन का काम है, मन का सहयोग है - सुनी हुई बात को ग्रहण करना। ४ धारण - जो कुछ सुना - उसे धारण किया - स्मृति का अंग बनाया। ५ ऊह - यानी अब तर्क करो बुद्धि को काम में लो। सही-गलत को जांचो। ६ अपोह - इसका अर्थ है अपने लिए असत् को गलत को हटाना। ७ अर्थ विज्ञान - जो कुछ सुना उसमें चलनी से छानकर कुछ रखा और कुछ हटाया। जो रखा - वह महत्वपूर्ण है। सीढ़ियां खत्म। अब है ८वीं मंजिल - तत्त्व ज्ञान।

तत्त्व का ज्ञान हुआ कि जीवन बदला, जीवन रूपांतरित हुआ। श्रवण सार्थक हुआ - श्रोता धन्य हुआ, कृतकृत्य हुआ।

उपस्थिति मात्र का प्रभाव

तुम तसल्ली न दो
सिर्फ बैठे रहो
महफिल का रग बदल जाएगा
गिरता हुआ दिल सभल जाएगा।

यह कथन या तो इश्क का हल्का-सा रग लिए है पर, जीवन का एक गभीरतम रहस्य यहा छिपा है। प्रेम का लौकिक अनुभव-यही दिव्य अनुभव है।

एक महात्मा सचमुच के महात्मा-कहीं बेठे है चुपचाप मौन। जरा उनकी शात मुखमुद्रा को देखिए, हमे लगेगा - जैसे हमारी शकाए समाधान बन गई है। काम-क्रोध का दावानल शात होता-सा नजर आ रहा है। किसी की उपस्थिति मात्र सारे वातावरण मे नव स्फूर्ति का सचार करती है।

रमण महर्षि के पास बहुत से लोग जाते थे - उनके पास बेठना भी सुखद होता था।

'बेठे-बैठे सत को अपलक निहारते-निहारते जिस शाति का अनुभव किया जिस सुख की अनुभूति हुई ऐसा सुख प्रधानमत्री पद तक पहुचने पर भी नहीं मिला।' - मुरारजी भाई देसाई।

सचमुच इत्र बेचने वाला-चाहे कुछ भी न दे फिर भी सुगध तो मिलेगी ही।

'जो कछू गधी दे नहीं फिर भी वास सुवास।'

अपना अपमान न कर

विकास व उत्थान की सदा सभावना है। पर, जब काई व्यक्ति अपने का हीन समझने लगता है यानी जब हीनता ग्रथि से ग्रस्त हा जाता है, नवउत्थान के सारे द्वार बद हा जाते हैं। अत यह आवश्यक है उत्थानकामी का सदेव आशा की किरण से अपने का ज्योतिर्मय रखना ह।

हीनता ग्रथि कभी-कभी व्यक्ति का बडबोला बना देती ह वह अपन का सर्वसमर्थ समझकर दूसरा के प्रति हीनता का भाव पालता हे। असूया दाप मे-गुणो म दाप निकालने की आदत का शिकार हो जाता है।

हम अपने को हीन, तुच्छ अपदार्थ न समझें पर दूसरा का भी नहीं। 'मैं ब्रह्म हू' इसका सही अथ हे - सब ब्रह्म हैं। 'म ब्रह्म हू' यह आत्मदर्प नहीं अपनी साई शक्तिया को जगाने की एक ललकार ह।

कूर्म पुराणकार ने व्यक्ति के उत्थान का सीधा सही सूत्र दिया ह, या याद रखने लायक है। करना चाहिए - जा आचरणीय ह -

नात्मान चावमन्यत दन्य यत्नेन वर्जयेत्।
न विशिष्टानसत्कुर्यात् नात्मान का शपेत् बुध ॥

- कूर्म पुराण उपरि विभाग,
अध्याय १६-५५

समझदार को अपना अपमान नहीं करना चाहिए। यानी हीन-भाव नहीं अपनाना चाहिए। प्रयत्नपूर्वक दीनता का परित्याग करना है। न विशिष्ट का अनादर करे और न अपने को शाप दे।

घर का अर्थ — आओ

गृह का अर्थ ह - जा ग्रहण करने का अपनाने को सदा तैयार रहे। गृह कहता ह - आओ तुम्हारे लिए मेर द्वार सदा खुले हैं। घर है जहा प्यार मिनता हे दुलार मिलता हे। मसार है - जहा गुणा क प्रति आदर हे पुष्पमालाए हैं जयजयकार हे पर जहा काई फिसला कि मार, अपमान तेयार। कभी पुष्पहार कभी पाषाण प्रहार। यही जगत् की रीति हे।

पर घर? यहा हारे-थके के घावा का उपचार मिलता है। प्रेरणा व प्रोत्साहन के दिव्य स्रात का नाम हे - घर। पर घर दूर होते जा रहे हैं - रह गए हैं - भवन, सराय रैन बसेरे होटल। 'स्वीट हाम' की मीठी याद शप है। दुर्बलता को दुलरा कर सबलता मे बदलने के स्थान थे - घर।

विभागशील सत्व क्षमायुका दयालुक ।

गृहस्थस्तु समाख्याता न गृह गृही भवत्॥

- केवल घर म रहने मात्र से गृहस्थ नहीं। गृहस्थ वह है जा धन का उचित ढग से बाटता हे जो क्षमाशील ह जो दयालु है।

'तुम्हारा घर जहाज का लगर (राकन वाला बाधक) न बन बल्कि मस्तूल बने वह घाव की झिल्ली नहीं, बल्कि आख की रक्षा करन वाली पलक बने'।

- खलील जिब्रान

उच्चाकाक्षा की महिमा

महत्त्वाकाक्षा मनुष्य को आगे बढने के लिए उकसाती है। पर, इसका एक खतरा है - वह आदमी को अधा भी बनाती है - इससे वह उचित अनुचित का विचार नही करता और येन-केन-प्रकारेण आगे बढने की धुन मे पागल हो जाता है। महत्त्वाकाक्षा म प्रकाश है, पर आग भी कम नहीं। इसलिए आदमी को उच्चाकाक्षा वाला होना चाहिए।

उच्चाकाक्षा का अर्थ है - अपने को अच्छा बनाना ऊचा बनाना चरित्रवान् बनाना।

महत्त्वाकाक्षा मे गर्व है दूसरा से आगे बढने का भाव है। उच्चाकाक्षा म विनम्रता है दूसरा के प्रति सद्भाव है। महत्त्वाकाक्षा की पूर्ति बाहरी साधना उपाया से निर्भर है। उच्चाकाक्षा की पूर्ति भीतरी तपस्या पर टिकी है।

किसी के प्रति द्वेप न रखना सबके प्रति मैत्री का भाव रखना दु खिया के प्रति करुणा रखना - उच्चाकाक्षा के फलितार्थ है।

इसलिए जीवन मे केवल आग बढना ही नहीं - हम ऊचा भी उठना है। महत्त्वाकाक्षा के ऊपर उच्चाकाक्षा का अकुश रहे ता व्यक्ति व्यक्तिश आगे बढेगा पर दूसरा का भी भूलेगा नहीं।

कारवा गुजर गया

हम गलत काम करते हैं, फिर पछताते है। हम साचते हें जब पछता लेते हैं ता गलत काम का दड मिल गया। हम बेफिक्र हो जाते हें। या हमारी आदत पड जाती है - गलत काम करना, माफी मागना फिर गलत काम करना और पछताना।

या ही जिदगी अकारथ बीत जाती है। लगता है - हम रात पडत-पडते सोने का तैयारी शुरू करते है और बिछौने बदलने, नए-नए आराम देने वाल पलग बदलने नई-नई सुविधा देने वाली शय्याओ को लाने और उन्हे सवारने सजाने म लगे रहते है। इसी तैयारी म सारी रात बिता देते हैं। जब साने का समय आता है ता देखते हें - रात तो बीत गई। अब काल-बली डडा लिए तैयार - 'कहता है, चलो।' हम चिल्लाते हैं - 'एक क्षण ता साए नहीं।' पर अब कैसा सोना। तब पछताव का करुण स्वर विगलित हाता है -

डासत ही गइ बीति निसा सब
कबहु न नाथ! नींद-भरि सोयो।

— विनय पत्रिका।

बगीचे म घासला बनाना है कभी साचते हैं - वहा बनावे कभी मन होता है - वहा नहीं यहा! आर या बहार खत्म! फिर कैसा घासला।

चमन मे नशेमन कहा बने कहा न बने
आर इतने म बहार खत्म।

इसलिए जो करना है करो 'कर्‍या सी काम भज्या सो राम।' यही सीख खरी है। नहीं तो 'कारवा गुजर गया गुबार देखते रहे।'

यहाँ उधार का क्या काम ?

खिले हुए वसत को देखकर मुरझाए हुए एक इसान ने कहा - 'क्या तुम मुझे तारण्य का तेज यह लालिमा उधार दे सकोगे?'

बसत - 'भोले। यह ता साधना है यहा उधार का क्या काम। गर्मी की लू-लपटो को मैंने झेला है बरसात म भींगा सिहरा हू। शीत के प्राण हर झाके म अटल रहा हू, पतझड म ककाल बन भीतर धरती मा के गर्भगृह मे ध्यानस्थ रहा हू - इसी का यह अयाचित सुफल हे।'

आदमी भीतर ही उत्तर की तलाश करने लगा। 'मे कभी छिपकर बैठा कभी अपने को ढककर अपने से पलायन करता रहा। परिवश से दूर, अकेला में।'

इसान - 'तुमसे मैंने प्रश्न किया पर प्रश्न ता प्रश्न बनकर मुझ से पूछ बैठा। इसका उत्तर मुझे अपने से ही मिला हे।'

प्रश्न कीजिए पर उत्तर? जब कभी मिलता हे अपने भीतर से मिलता है।

प्रश्न - हजारा प्रश्न खडे करता है। इसका उत्तर हे - अत साधना।

चिडिया तो गाये ओर इसान

एक काफिला रात भर सफर करता रहा। सुबह जब हुई ता सारे लाग सो गए, एक आदमी चाककर उठा आर जगल की आर चल दिया। दिन चढ आया। लोग जागे देखा उनका एक साथी गुनगुनाता आ रहा हे। सबने पूछा 'कहा चले गए, नींद नहीं ली।' उसने कहा - 'सुबह का समय साने का नही जागने का हे। मेंने दरख्ता पर बुलबुला का पहाडो पर तीतरा का पानी मे मेढको को ओर तरह-तरह के जानवरा का जगल म उस सिरजनहार क गुणानुवाद म गाते नाचत देखा ता में भी उसम शामिल हो गया।'

यह बात प्रकृति के नियम विरद्ध हे कि एक चिडिया ता गाए, चहके खुशी से पर फेलाकर उड फुदक आर नाचे और इसान पडा इस सगीत समाराह म शामिल न हा।

सिर्फ बुलबुल ही उसके बनाए फूल क लिए तारीफ मे नही चहचहाती ह किन्तु उसकी प्रशसा म हर काटा भी जुबान रखता है -

न बुलबुल बर गुलश तसवीह ख्वानेस्त।
क हर खारे बतसबीहश जुबानस्त॥

चाह ही गरीबी

जुन्नैद के चरणों में किसी ने पांच सौ अशर्फियां लाकर भेंट की।

जुन्नैद - 'क्या तुम्हारे पास और कुछ नहीं है जो यह फिजूल सी भेंट लाए हो। क्या तुम्हारे पास और अशर्फियां हैं?

उस व्यक्ति ने उत्तर दिया - 'हां हैं-क्या नहीं बहुत हैं।'

जुन्नैद - 'अच्छा यह बताओ जितनी तुम्हारे पास अशर्फियां हैं, उससे ज्यादा की चाह है?'

व्यक्ति - 'चाह तो है रात दिन चाह है आखिर इतनी अशर्फियों से क्या हो सकता है?'

जुन्नैद ने हंसकर कहा - 'तो फिर जो दीन दरिद्र है चाह में हैं उनसे लेने में मजा नहीं। तू ये वापस ले ले। क्योंकि तुम्हें मेरी बजाय इनकी ज्यादा जरूरत है।'

जुन्नैद के कपड़े जगह-जगह से फटे थे पर उन फटे कपड़ों के भीतर से जो मस्ती और बेपरवाही का खजाना झांक रहा था - उसके सामने सोलोमन के खजाने बेरौनक थे, दो कौड़ी के थे।

'जिनको कछू न चाहिए,
सो ही शाहनशाह।'

मुझे कोई फकीर नही मिला

एक बादशाह किसी सगीन मामला म उलझ गया। उसने यह मिन्नत मानी कि मैं इस मामल मे कामयाब हा जाऊ ता इतना धन फकीरो और महात्माआ म बाटगा। जब बादशाह का अपने काम म सफलता मिल गई ता उसने एक कृपा पात्र नाकर को बुलाया आर उसके हाथ म दीनारा से भरी थली दकर कहा 'जा फकीरा म बाट आ।'

कहते ह वह नाकर बडा समझदार था। वह सारे दिन चारा ओर घूमा फिरा आर सध्या समय लाट कर आया। उसने वह थैली बादशाह के आगे रख दी ओर कहा - 'मुझे कोई फकीर नही मिला।' बादशाह - 'कसी बात करता ह। इस नगर मे एक सा फकीरो को तो मैं स्वय जानता हू।' जहापनाह। जा फकीर हैं वे धन लेत नहीं जो लेते हैं फकीर नहीं। बादशाह 'तू गुस्ताख इन फकीरा क प्रति मरी श्रद्धा ता कम कर रहा है पर न्याय तेरी आर है।'

'अगर फकीर दिरभ आर दीनार (एक प्रकार के सिक्के) से वास्ता रखता ह उससे तू वास्ता न रख।'

भक्त प्रवर तुलसी ने इस व्यथा का अनुभव किया 'तपसी धनवत दरिद्र गृही।'

एक दिन मे शिकायत की पट्टी

सत राबिया जा रही थी। उसने एक आदमी को माथे पर पट्टी बाधे देखा।

राबिया - 'क्या हुआ तेरे। यह क्या लपेट रखा ह माथ पर क्या लपेट रखा हे।'

आदमी - 'मेरा माथा दु ख रहा ह, सरदर्द ह।'

राबिया - 'तू कितने साल का हे।'

आदमी - 'तीस साल का।'

राबिया - 'तीस साल मे तू तदुरुस्त रहा या बीमार?'

आदमी - 'तदुरुस्त।'

राबिया - 'तीस साल तक तू नीराग रहा नीरोग रहने की अल्लाह के प्रति शुक्रगुजार हान की पट्टी कभी बाधी नहीं और एक दिन मे शिकायत की पट्टी बाध ली।'

यह कितना निर्दय सत्य ह कि हम प्राप्ति के लिए कृतज्ञता ज्ञापित नही करते पर करत है - न मिलने की हजारा शिकायते। कभी ईश्वर को धन्यवाद भी देना सीखे।

आमार कि फलेर अभाव ?

कहीं-न-कहीं कोई अटकता है। रूप पर पतंगा प्राण दे देता है। शमा पर पर्वाना कुर्बान। हरिण नाद पर रीझकर मरण का वरण करता है। मछली स्वाद के लिए अपने को खो देती है। गंध पर भौंरा कैद होकर मर मिटता है और हाथी—हथिनी के स्पर्श सुख के लोभ से पालतू बन कैदी-सा हो जाता है।

पर कोई-कोई प्रभु के प्रसाद से सारे फंदों को काटकर अपने आप में सावधान रह पाता है। लंकापति रावण की महारानी मंदोदरी ने जब हनुमान को स्फटिक स्तंभ से उछल कर ब्रह्मास्त्र लिए हुए भागते देखा तो वह तरह-तरह के फल देने लगी यह सोच कर कि यह फलों के लोभ से ब्रह्मास्त्र को फेंक कर फलों को चखने के चक्कर में आ जाएगा।

पर हनुमान कहने लगे -

'आमार कि फलेर अभाव?

पयछे जे फल जनम सफल

मोक्ष फलेर वृक्ष राम हृदये।

श्रीराम कल्पतरु मूले बसे रई।

जखन जे फल बांछा सेई फल प्राप्त हुई।

- मुझे क्या फल की कमी है? मुझे जो फल प्राप्त है उससे मेरा जन्म सफल हो गया है। मोक्ष-फल के वृक्ष श्रीराम मेरे हृदय में हैं। मैं श्रीराम रूपी कल्पवृक्ष के मूल में बैठा हूं। जब जिस फल की इच्छा होती है वह फल मुझे उसी समय प्राप्त हो जाता है।'

चिंतन मनन

बरसती चाँदनी को देखो

आकाश में चांदनी बरस रही थी। आसिसी नाम की बस्ती के मकान, वहां की मीनार, वहां के रास्ते चांदनी में नहा रहे थे। चांदनी के झरने चारों ओर झर-झर करते बह रहे थे। पर, सभी निवासी चांदनी से बेखबर ऊंघ रहे थे।

अचानक संत फ्रांसिस ने सारफिकाना के गिरजाघर से खतरे के घंटे की तरह जोर-शोर से घंटा नाद किया। सोते हुए निवासी चौंक कर, नींद त्याग कर, किसी खतरे की आशंका से दौड़े-दौड़े आए। देखा-संत घंटा नाद किए जा रहे हैं। लोगों ने पूछा - 'क्या हो गया है, क्यों घंटा बजा रहे हैं? कहीं आग, भूकंप, अंधड़ का खतरा...।'

संत - 'जरा आंख ऊंची करो। बरसती चांदनी को देखो। क्या खतरे के लिए ही जागना जरूरी है। चांदनी को कभी अंजुरी भर पीओगे भी नहीं।'

कविवर रामकुमार वर्मा ने भी यही अनुभूति की -

'इस सोते से संसार बीच
जगकर सजकर रजनी बाले।
कहां बेचने ले जाती हो
ये गजरे तारों वाले।'
पर, यदि सुबह तक माल न बिका तो -
'ओस रूप में बिखरा देना ये गजरे।'

कल है कल आने वाला

रात आने वाली है, मेह अधरी रात। यह सत्य है, यह आशका है, यह भविष्य है यह कल है। पर डर क्या। भय कैसा। हमारे पास दीपक है बाती है तेल है ओर दियासलाई। फिर भी हम निश्चित नहीं।

अभी सूरज ह प्रकाश है, दुपहरी है - फिर भी हम चोक उठते हैं - अधेरे के डर के मारे कापते हैं और दिया जलाकर देखते ह - सारा प्रबध ता ठीक-ठाक है ना। कही दीप न जला ता ।'

या डर के मारे - अधेरे के न होने पर भी अधेरे की आशका से डर-डर कर हम दिन मे दीप जलाकर - तेल जलाकर बत्ती नष्ट कर रहे हैं और जव अधेरा आएगा तब क्या हमे ऐसा नहीं लगेगा कि हमने व्यर्थ ही दिन मे अधर से मुकाबिला करने का सारा इतजाम ही बर्बाद कर दिया है।

असल म नासमझ दिन मे ही दिये जला लेते हैं और फिर रात मे चकित हाते हैं कि प्रकाश क्या नहीं है।

जीवन क जीन का सूत्र है -

अभी तो बहार है। पूरा भरपूर जीवन-ऐसा जीना भविष्य पर विजय पाप है।

मत याद दिलाओ कल की
कल है कल आने वाला।

वहाॅ कोई श्रोता नही था

बुद्ध प्रवचन दे रहे थे। देते-देते मौन हा गए। शात एव समाधिस्थ। शिष्य, भिक्षुक, श्रोता बैठे रहे बैठे रहे – फिर सभी उठकर चले गए।

दूसरे दिन पूछा – 'शास्ता! आप कल मान क्या हो गए?' शास्ता – 'मौन इसलिए हो गया – क्योकि वहा कोई श्रोता नहीं था। फिर क्या सुनाना किसको सुनाना?'

भिक्षुक – 'कोई नहीं था ऐसा तो नहीं। हम बहुत सख्या मे थे और श्रोता भी जमे थे।'

शास्ता – 'सचमुच वहा काई नही था। था सुनसान। कोई पैर हिला रहा था। कोई आखें फाड रहा था। कोई आसन बदल रहा था। जब एकाग्रता हो तो शरीर भी नि स्पद होगा।'

वक्ता तभी अच्छा बोलता है, चाहे उसे एक भी सहृदय लक्ष्यीभूत श्राता मिले।

ऐसा सुनिए कि कहने वाला उभरे।
ऐसा कहिए कि बैठ जाए दिल म।

सवाल — एक बुरी आदत का है

एक बालक ठीकरिया (मिट्टी के टूटे बर्तन के टुकडे) से जुआ खेल रहा था। यूनान के विश्वविख्यात दार्शनिक प्लेटो यह देख कर रुक गए। कहन लग - 'बच्च जुआ खलना ठीक नहीं।' बालक होशियार था उसने उत्तर दिया - 'क्या मैं पेसा से जुआ खल रहा हू, जो आप मुझ राक-टोक रहे हें। य हैं - नाचीज मामूली ठिकरिया।' प्लेटो - 'सवाल जुए का है एक बुरी आदत का है। क्या बुरी आदत मामूली होती हे?'

लगता हे, आज भी दार्शनिक प्लेटो (अफलातून) कहीं मान खडा मानव जाति को चेता रहा हे। हमलाग नासमझ बालक की तरह कह रहे हैं - 'इसस क्या हाता ह ये गदी पुस्तके य भद्दे चित्र थाडा सा दिलयहलाऊ नशा य लाटरी के तोहफे - हमारा क्या बिगाड सकत है।'

सवाल थाडी बहुत हानि का नहीं - सवाल हे बुरी आदत का। जा मामूली नहीं। पैर फिसला कि फिसला - फिर हड्डी पसली का अता पता नहीं। सर्वनाश के कगारे पर खडे का एक जरा स धक्क का इतजार।

चितन मनन

काल जयी — गाधी

काल अश्व हैं। यदि हम समय पर सार काम सपन्न करते हैं ता हम काल अश्व पर सवार हैं, नहीं तो यह काल हम पछाडकर कुचल देता है।

कामकाज करना है ता करना ह, कोई वहाना नहीं। सन १९३७ म गाधीजी कलकत्ता म सुभाप चद्र वोस के वडे भाई शरत चद्र वास के घर ठहर हुए थे। उन दिना महादेव भाई वहुत व्यस्त रहते थे। घूमने भी नहीं जा पाते थे। यह देखकर गाधीजी ने गगन विहारी महता से जा उन दिना वहीं रहते थे, कहा 'आप महादेव को अपन साथ घूमने ले जाया कर।'

लेकिन एक दिन महादेव भाई न जा सके, व्यस्तता भी थी और थकान भी। गाधीजी ने उन्ह झिडक कर कहा - 'महादेव! किसी दिन तुम विना भाजन के रह जाओ तो काई हर्ज नहीं, किंतु व्यायाम से कभी मुह न माडना। जाओ भाई घूमने के लिए जाओ।'

गाधी जी समय के छोटे खड, क्षण-क्षण के प्रति सजग थे, यही उनके कालजयी होने का रहस्य हे। वे काल म नहीं जीते थे। काल का लाघकर सदा शाश्वतता म रहे। इसी म उनका महात्मापन था।

आओ, बैठकर दुबारा तैयार करे

चीन के बादशाह का मत्री शाहचाग बहुत थक गया था पर उस सुबह बादशाह को पूरी रिपोर्ट लिखवा कर देनी थी। इसलिए वह रात को जागकर सहायक से लिखाता रहा। आधी रात तक वह विवरण तैयार हो गया। मत्री अपने शयनकक्ष की ओर जाने लगा। इतने म उसका सहायक भी उठा। पर अचानक उसका पर लैंप से टकरा गया। लैंप गिर पडा। कागज तेल से तर हो गए और जल गए। अब सहायक का 'काटो तो खून नहीं।'

मत्री यह देखकर मुडा और शात भाव से कहने लगा – 'इसमे आपका कोई दोष नहीं। अच्छा आओ, हम बैठकर दुबारा तैयार कर।' मत्री धैर्य के साथ उत्साह भर कर आसन पर जम गया और इधर उधर कागजा को टटोल कर रिपोर्ट लिखवाने लगा – जैसे कुछ हुआ ही न हो।

अपने सहायको के प्रति ऐसी प्रेम भरी सहिष्णुता जहा हो, वहा सभी कार्य निष्पन्न हागे ही।

त्यागी है — आप।

एक महात्मा त्यागी थे। चारा ओर उनका यश था। एक बार उनके सम्मान म दश भर क नामी लाग एकत्र हुए। सभी ने महात्मा के त्याग की महिमा का मुक्त हृदय से वर्णन किया। वर्णन यथार्थ था, उसमे काई अत्युक्ति नहीं थी।

अत म महात्मा ने आशिष वचन कहे – 'आप लागो ने जा मुझे त्यागी कहकर पुकारा ह वह एकदम गलत हे। मुझे आप अधिक मे अधिक बुद्धिमान कह सकते है। क्याकि त्यागी वह हे – जो बहुमूल्य चीज को छोड द। मने तो ससार की नाशवान्, तुच्छ वस्तुओ का छोडा हे और उमसे बढिया, नित्य सुखस्वरूप भगवान् की भक्ति का पल्ला पकडा हे – इसम मेरी बुद्धिमानी झलकती हे। त्याग नही।

त्याग ता आप लोग कर रहे हे – जो ससार की झूठी चीजो म लग रहे हैं आर नित्य अनत काल तक रहने वाले आनद का त्याग कर रहे हैं।'

सचमुच हम यह तो दख रहे हैं कि किसी सिद्धार्थ ने गृह सुख को छोडा – पर बुद्ध बन कर कितना पाया इसका हिसाब नहीं लगाते। साधु-सन्यासिया क लाभ का हम कहा समझ पाते हैं।

सत ता बुद्धिमान हें जा सही की आर सच्च लाभ की आर बढ रहे हैं।

आओ, बैठकर दुबारा तैयार करे

चीन के बादशाह का मत्री शाहचाग बहुत थक गया था पर उसे सुबह बादशाह का पूरी रिपार्ट लिखवा कर देनी थी। इसलिए वह रात को जागकर सहायक से लिखाता रहा। आधी रात तक वह विवरण तैयार हो गया। मत्री अपने शयनकक्ष की आर जाने लगा। इतन म उसका सहायक भी उठा। पर अचानक उसका पेर लैंप से टकरा गया। लैप गिर पडा। कागज तेल से तर हो गए आर जल गए। अब सहायक को 'काटा तो खून नहीं।'

मत्री यह देखकर मुडा और शात भाव से कहने लगा – 'इसमे आपका कोई दोष नहीं। अच्छा आओ हम बेठकर दुबारा तैयार करे।' मत्री धैर्य के साथ उत्साह भर कर आसन पर जम गया और इधर उधर कागजा को टटोल कर रिपार्ट लिखवाने लगा – जेसे कुछ हुआ ही न हो।

अपने सहायका के प्रति ऐसी प्रेम भरी सहिष्णुता जहा हा वहा सभी कार्य निष्पन्न हागे ही।

चिंतन मनन

त्यागी है — आप।

एक महात्मा त्यागी थे। चारो ओर उनका यश था। एक बार उनके सम्मान में देश भर के नामी लोग एकत्र हुए। सभी ने महात्मा के त्याग की महिमा का मुक्त हृदय से वर्णन किया। वर्णन यथार्थ था, उसमें कोई अत्युक्ति नहीं थी।

अंत में महात्मा ने आशिष वचन कहे - 'आप लोगों ने जो मुझे त्यागी कहकर पुकारा है वह एकदम गलत है। मुझे आप अधिक से अधिक बुद्धिमान कह सकते हैं। क्योंकि त्यागी वह है - जो बहुमूल्य चीज को छोड़ दे। मैंने तो संसार की नाशवान्, तुच्छ वस्तुओं को छोड़ा है और उससे बढ़िया नित्य सुखस्वरूप भगवान् की भक्ति का पल्ला पकड़ा है - इसमें मेरी बुद्धिमानी झलकती है। त्याग नहीं।

त्याग तो आप लोग कर रहे हैं - जो संसार की झूठी चीजों में लग रहे हैं और नित्य अनंत काल तक रहने वाले आनंद का त्याग कर रहे हैं।'

सचमुच हम यह तो देख रहे हैं कि किसी सिद्धार्थ ने गृह सुख को छोड़ा - पर बुद्ध बन कर कितना पाया इसका हिसाब नहीं लगाते। साधु-सन्यासियों के लोभ को हम कहां समझ पाते हैं।

संत तो बुद्धिमान हैं जो सही की ओर सच्चे लाभ की ओर बढ़ रहे हैं।

आओ, बेठकर दु

चीन क बादशाह का मत्री शा
सुबह बादशाह को पूरी रिपोर्ट लिख
को जागकर सहायक स लिखाता रहा।
हो गया। मत्री अपने शयनकक्ष को
सहायक भी उठा। पर अचानक उम
पडा। कागज तेल से तर हो गए आ
तो खून नहीं।'

मत्री यह देखकर मुडा अ
आपका कोई दोष नहीं। अच्छा
मत्री धैर्य के साथ उत्साह भर
कागजा को टटाल कर रिपा
हो।

अपने सहायका के
सभी कार्य निष्पत्र होग

जब तक एक भी प्राणी बाकी है —

यो भारतीय साधना म मुक्ति, निर्वाण, कैवल्य आदि का अशेष महत्व हे, पर, बाधिसत्वा का मार्ग अलग है। यह महायान हे।

'म परिनिर्वाण म प्रवश नही करूगा जब तक कि विश्व के अन्य सब प्राणी विमुक्ति प्राप्त न कर ले।'

शाति देव कहते हैं, 'प्राणिया की विमुक्ति के समय जो आनद सागर उमडता है रस विहीन मोक्ष का क्या करना।'

बोधिसत्व का सकल्प हे - 'मै सब प्राणियो को मुक्ति दिलवाऊगा। जब तक एक भी प्राणी याकी ह, में बिना निर्वाण प्राप्त किए ठहरा रहूगा।'

'में अनाथा का नाथ बनृगा। यात्रिया का सार्थवाह बनूगा। पार करने की इच्छा करने वाला के लिए में नाव बनूगा। में उनके लिए सेतु बनूगा। दीपक चाहने वाला के लिए म दीपक बनूगा। जिन्हे शय्या की आवश्यकता है, उनके लिए मैं शय्या बनृगा। जिनको दास की आवश्यकता ह उनके लिए दास बनूगा। इस प्रकार मे सब प्राणिया की सेवा करूगा।

सचमुच धर्म परार्थ साधना है। विश्व चेतना के साथ एकाकार हाने की यह विह्वलता धर्म की मूल सवेदना है। ऐसी उदात्त भावना धर्म म हो, तभी धर्म सच्चा धर्म हे।'

आँसू भी — मोती की आब लिये

फ्रांस के करडानिस बेल आइल के प्रकाश-गृह (लाइट हाउस) की घटना है। प्रकाश गृह मे लालटेन जलानेवाला अचानक बीमार पड गया। अधेरी रात थी। उसकी पत्नी ने लालटेन जलाया। वह लौट आई देखा पति मरणासन्न है। इतन म उसके दाना बच्चे लौट आए और कहने लगे - 'मा वह लालटेन घूम नहीं रही है।' प्रकाश गृह की लालटेन घूम कर चारा ओर प्रकाश न फैलाव ता समुद्र की उत्ताल लहरा मे जहाजा के डूबने का खतरा है।

वह स्त्री पति को मरणासन्न छोडकर अपनी दस साल की लडकी और सात साल के लडके को लेकर लालटेन ठीक करने गई। लालटेन ठीक नहीं हो सकी।

'बच्चा। तुम लोग रात भर इस लालटेन को घुमाते रहो। जोर का तूफान आ रहा है सावधान।' यो कह कर वह पति के पास चली आई।

दोना बच्चे नौ बजे रात से सात बजे सबेरे तक लालटेन घुमाते रहे। इस प्रकार जहाजा का प्रकाश देकर-न जान कितन प्राणिया की उन बच्चा ने रक्षा की।

बच्चे लाट आए। मा मृत पति के पास रो रही थी। पर पवित्र बलिदान के लिए उसके मानस म कहीं न कहीं सतोप की आभा थी। अपने बच्चा क स्वकर्त्तव्य पालन का सताप भी।

ये आसू कर्त्तव्यनिष्ठा की आभा से माती बन ढुलक रहे थे।

जब तक एक भी प्राणी बाकी है —

यो भारतीय साधना म मुक्ति, निर्वाण, कैवल्य आदि का अशेष महत्व है पर बोधिसत्वा का मार्ग अलग है। यह महायान है।

'मैं परिनिर्वाण म प्रवेश नही करूगा जब तक कि विश्व के अन्य सब प्राणी विमुक्ति प्राप्त न कर ले।'

शाति देव करते हैं, 'प्राणिया की विमुक्ति के समय जो आनद सागर उमडता है रस विहीन मोक्ष का क्या करना।'

बोधिसत्व का सकल्प है - 'मैं सब प्राणिया को मुक्ति दिलवाऊगा। जब तक एक भी प्राणी बाकी है मैं बिना निर्वाण प्राप्त किए ठहरा रहूगा।'

'मैं अनाथा का नाथ बनूगा। यात्रिया का सार्थवाह बनूगा। पार करने की इच्छा करने वाला के लिए मैं नाव बनूगा। मैं उनके लिए सेतु बनूगा। दीपक चाहने वाला के लिए मैं दीपक बनूगा। जिन्हे शय्या की आवश्यकता है उनके लिए मैं शय्या बनूगा। जिनका दास की आवश्यकता है, उनके लिए दास बनूगा। इस प्रकार मैं सब प्राणिया की सेवा करूगा।

सचमुच धर्म परार्थ साधना है। विश्व चेतना के साथ एकाकार होने की यह विह्वलता धर्म की मूल सवेदना है। ऐसी उदात्त भावना धर्म म हो तभी धर्म सच्चा धर्म है।'

तुम तरी को छोड दो — बढती लहर पर

यहा गलिया हैं डगर ह राह ह रास्ते है पथ ह और राज-पथा पर जीवन का अपना पथ खुद तलाशना पडता हे तलाशना नही अपने लिए अपना पथ स्वय बनाना पडता है। बने हुए पथ-रूढिया ह भटकाव हैं आर कही-न-पहुचाने वाले घुमावदार चक्कर ह। जा चलते ह पर पहुचते कही नहीं।

तो यह जीवन ह, एक तरी की तरह आर सामने ह महासागर-जिसकी लहर आर लहर हमे पुकारती ह आर कहती ह यहा सन आर रास्ते ह आओ हम पर चढो हमसे मिलो हम से टकराआ हम सहलाओ आर अपना पथ बनाआ और बन पथ की लकीर मिटाते आग बढा।

जिधर से आ रही है लहर
अपना रुख
उधर को मोड दो,
तरी सागर की सुता है
सगिनी हे पवन की
उसे मिलन दा ललक कर
लहर से
वही उसको जय मिलेगी
या मिलेगी लय
असशय
तुम तरी को छाड दो
बढती लहर पर

— इद्र धनु रौंद हुए

कबीर जी न ठीक कहा -
'जिन खाजा तिन पाइया गहर पानी पैठ
म बौरी बूडन डरी रही किनार बैठ।'

पोथी पढि-पढि जग मुआ

भरद्वाज जीवन भर वदो का अध्ययन करते रहे। एक दिन इद्र ने आकर विशाल पर्वत पुज म स एक मुट्ठी भर पत्थर के टुकडा को हाथ म लेकर कहा –

'भरद्वाज! अब तक वदा का पढ कर जो कुछ ज्ञान तुमने प्राप्त किया ह ओर दूसरे जन्मा म भी जो कुछ ज्ञान प्राप्त कराग वह सब इन पर्वता की तुलना म एक मुट्ठी भर टुकडो के समान हे।'

— तैत्तिरीय ब्राह्मण

हमारे सामने ज्ञान विज्ञान का अनत महासागर लहरा रहा है, उसी को पाने म हम लग रहते हैं। यह जानकारी भार है गर्दभ पर चदन का भार मात्र। सवाल निजी अनुभव का हे, इस अनुभव के बिना सारी जानकारी राख का ढेर है, जिसमे चिनगारी नहीं।

इसलिए सतो ने कहा –

'पाथी पढ़ि पढि जग मुआ, पडित भया न कोय'

प्रश्न हे – हमे 'दो आखर' सब सिखा पाते हैं – पर इन्हे 'ढाई आखर' प्रेम का बनावे ता पढाई सार्थक। दो आखर हैं – 'मैं ओर मेरा' यही ससार की पढाई का सार है – यहा ता पडित मूर्ख एक समान है।

इसके आगे दो रास्ते हैं – अलग-अलग दिशाआ को 'तू कहता पोथी की देखी, में कहता आखिन की देखी।' आखिन की देखी – यही साखी हे। यही सत की अनुभूति हे 'अणभै वाणी' ह, जिसके सामने सारा पाथी-ज्ञान या लगता है – जेस एक ओर हीरा आर दूसरी ओर काच कथीर का ढेर।

सच है 'हीरा की नहि वोरिया'

सुनो, विचारो, तौलो, मानो

समाज म गुरुडम फलता रहता ह। हम कोरी श्रद्धा क लिए कहा जाता है पर ऐसा सुनने को यदा-कदा मिलता हे - सुनो, पर विचारो बुद्धि की तुला पर ताला प्रज्ञा के प्रकाश मे जाचो। बुद्ध का यह कथन प्रज्ञा क गौरव को पुकारता है --

केशपुत्र नामक ग्राम के कालाम क्षत्रिया से भगवान् न सदा स्मरणीय शब्दा मे कहा था - "कालामो। न तुम श्रुत के कारण किसी बात को माना, न तर्क के कारण न नय-हेतु से न वक्ता के आकार के विचार से न अपने चिर परिचित मत के अनुकूल हाने स न वक्ता के भव्य रूप हाने से और न इसलिये कि श्रमण हमारे गुरु हैं यह साचकर। बल्कि कालामो। जब तुम स्वय ही जाना कि ये बात अच्छी अदोष विज्ञा से अनिन्दित हे यह ग्रहण करने पर हित सुख के लिए हागी तो कालामा। तुम उन्हे स्वीकार करो।"

श्रद्धा का महत्व है पर प्रज्ञा के प्रकाश म। सच्ची श्रद्धा 'प्रज्ञान्वयाश्रद्धा (पज्ञान्वया शद्धा) रूपा है।'

जीवन ता हस की उडान ह मानसरोवर के लिए - जिसके दा पख हैं - श्रद्धा और प्रज्ञा। जीवन - नौका क हा जेसे डाड और पतवार।

विनोबा की अनमोल कमाई

चोरी आदि कितन ही अपराधो म केद-कदिया ने धुलिया जेल के अधीक्षक का अर्जी दी - 'हमारी कमाई म स दो आने हमका अभी अग्रिम दिए जाए, हमे आवश्यकता हे।' अध्यक्ष ने पूछा - 'तुम्हें दो आना क्या चाहिए?' केदी - 'हमे विनोबा भावे बाबा की लिखी हुइ 'गीताइ' खरीदनी है, जिसका मूल्य एक आना ह।' अध्यक्ष - 'फिर एक आना और क्यो चाहिए?' केदी - 'हम विनोबाजी का एक आना दक्षिणा म दना है।'

यह बात सन १९३२ की हे। बाबा उस समय धुलिया जेल म थे। बाबा की लिखी हुई मराठी भाषा मे 'गीताई' (गीता माता) नाम से गीता का अनुवाद निकल गया था। दाम एक आना। पर बाबा की कडाइ पुस्तक मुफ्त मे नहीं। किसी को भी नहीं। काई गरीब है तो क्या वह मेहनत-मजदूरी कर पेसे बचाकर खरीदे। छात्र गरीब ह तो वह भी काई काम करे - पर किताब फोकट म नहीं।

जब बाबा का मालूम हुआ कि चोर कहलान वाल कैदी भी अपन खून-पसीने की कमाई से गीताई खरीद रहे हें ता बाबा का जितनी खुशी हुई उसकी सीमा नहीं। बाबा को गुरु रूप स दक्षिणा भी मिली - कृतज्ञता की यह चरम सीमा ह। पता नहीं - बाबा ने दक्षिणा का क्या किया? पर, वह अनमाल कमाई कितनी सात्त्विक, कितनी पक्की कितनी सच्ची - इसका कौन मूल्याकन करे।

प्रश्न हे - क्या हम खरीदकर पढते हें? क्या लेखक का गुरु दक्षिणा देत हें? लगता ह - यह प्रश्न टकराकर पुन लौटकर [illegible] होता विलीन हो रहा है।

इतिहास को बनाते हे — युवक।

जीवन का एक जटिल प्रश्न हे - इतिहास कौन बनाता है? करोडा लाग इतिहास पढत हें, व बुद्धिमान बनत ह सभल-सभल कर कदम उठाते ह। लाखा लाग इतिहास का बनते देखते हें, देखने का एक ऐतिहासिक आनद हे, उस आनद का कहत ह सुनते हें सुनाते हें। हजारा लाग इतिहास को बिगाडते ह, अपने अहकार से अपनी लिप्सा से अपने अविवेक और कार जाश स।

इतिहास का बच्चे नहीं बनाते क्याकि व दिवा स्वप्न देखत हैं। वे सपने लेते हैं। इतिहास को जाशीले युवक नहीं बनाते वे या ता कारे जोश म नकारते हें सब का नकारते हें और 'हा' तक आ नहीं पाते आर यावन का उतराता वेग उन्ह -

'भूल गए राग रग भूल गए छकडी तीन चीज याद रही तल नान लकडी' की आर ठल देता ह।

इतिहास बूढे नहीं बनाते उनम हाश हे - पर, जाश नहीं। अत बुढापा पछतावा करता है और भूत-सा बना भूत म जीता हे।

इतिहास को ढाकर चलना अलग ह। कराडा लाखा और हजारा लाग इतिहास क प्रवाह म बहत ह - जैसे नदी के तज प्रवाह म वृतच्युत पत्र।

इतिहास का बनात हें - युवक सच्चे युवक - जिनम बच्चा सी सचाई हा युवका जैसा जोश हा वृद्धा जैसा हाश हा।

सचाई क साथ यह जाश और हाश जिम बिदु पर मिला वहीं इतिहास की रुकी हुई धारा वेग से प्रगतिशील हुई। युगातर हुआ। हुआ नए युग का अरुणादय।

'सभवामि युग युग'

भगवान् को ये — ना पसन्द है

परमेश्वर सबका प्यार करते ह सबके सुहृद ह - यानी अकारण बधु ह, हितैषी ह। पर जस एक शल्य चिकित्सक रागी स प्यार करता है इसलिए वह शल्य क्रिया मे गलित विपाक्त अग मे चीरफाड भी करता हे यह चीरफाड भी हित भावना से भरी ह।

इसी तरह यहा़ऽ परमेश्वर भी इन सात से नफरत करता ह - पर, यह नफरत भी - ससार के लिए - भीतरी प्यार से छलक रही ह -

भगवान् का ये नापसद ह —

(१) घमड स चढी हुई आखे (२) झूठ बोलन वाली जीभ (३) निर्दोष का खून बहान वाले हाथ (४) बुराई की आर दौडने वाले पर, (५) अनर्थ की कल्पना करने वाला मन (६) झूठ बालने वाला गवाह (७) भाई-भाई मे फूट डालने वाला आदमी।

एक ओर जगह यह बात या कही गई हे - खुदा तीन को नापसद करता ह आर तीन को बहुत नापसद।

(क) कुकर्मी को नापसद करता हे पर, बूढे कुकर्मी को बहुत नापसद।

(ख) कजूस को नापसद करता हे पर धनी कजूस को बहुत नापसद।

(ग) अहकारी को नापसद करता हे पर साधु अहकारी को बहुत नापसद।

इस नापसदी क प्याले मे क्या हम प्रेम क छलकते हुए अमृत का नहीं देखना चाहिए।

बीच मे टाग अडाना — किसलिये ?

एक राजा के दरबार म, बुद्धिमान लाग किसी विपय पर तर्क-वितर्क कर रहे थे। उस समय एक नामी व्यक्ति चुपचाप बेठा सुन रहा था। लोगा ने पूछा - 'हम आपको यहा सबसे बुद्धिमान मानते ह। पर आप चुपचाप बेठे रहे सुनते रहे, बाले नहीं - इसका रहस्य क्या है?' बुद्धिमान ने उत्तर दिया - 'समझदार आदमी - हकीम की तरह होता हे हकीम का काम बीमार को दवा देना है। जन मे देख रहा हू - तर्क-वितर्क ढग का हे, कोई आग्रह नही है। तो बीच मे बोल कर टाग अडाना नासमझी हे। जव कोई काम बिना हस्तक्षेप के ठीक हो रहा है तो उस समय कुछ कहना अनुचित है। हा यदि में किसी अधे मनुष्य को कुए की तरफ जाते देखू और उस समय कुछ न बोलू ता मैं दोपी हू।'

इसका मतलब है - बिना जरूरत के एक शब्द भी न बोलो पर जरूरत पडने पर मान भी न रहो।

इसी का नाम है - वाक् सयम। जो मोन ओर मुखरता के मध्य सयत रूप से स्थित ह।

चितन मनन

इल्म का भटकता मुसाफिर

यह फैली हुई सृष्टि विचित्र है, रहस्यमयी है और सुदर भी। कदम-कदम पर सवाल है, जवाब भी ह। शकाए हैं, समाधान भी हैं। सवाल और जवाब का यह अतहीन सिलसिला है।

कभी-कभी धोखा हाता है कि सब कुछ समझ म आ गया काई प्रश्न शेष नहीं। पर अचानक सामने जिदगी इस कदर नए रूप म, नया यथार्थ लिए खडी हो जाती है - सारे उत्तर चकनाचूर हो जाते हैं। नए उत्तरा की तलाश मे हम चल पडते हैं।

यह हजारा वर्षों की तलाश-नए नए रूप धारण करती आगे सरकती रहती है।

'हकीकत तो यह है आखिरी मन्जिले मकसूद जिसके सुराग (अन्वेषण) म इल्म का मुसाफिर निकला था आज भी उसी तरह गैर मालूम ह, जिस तरह ढाई हजार बरस पहले थी। हम जिस कदर उसक करीब होना चाहते हैं उतना ही वह दूर हाती जाती है -'

- 'मेरा और उसका सबध एसा है जैस कि लहर और किनार का मेल है। हर क्षण वह मर साथ भी है और दूर भी।' — गुलाम खातिर।

किनारा और लहर-दोना का मल है, पर लहर आई फिर चली गई, फिर नई लहर-दोना करीब, दाना दूर।

लकिन-जब भावना जगी विश्वास चाला आस्था उभरी समर्पण सधा-तभी सब मिला।

लहर कापती रही, बुदबुद चुपचाप विलीन हाकर सब पा गया।

कपकप हिलोर रह जाती
रे। मिलता नहीं किनारा।
बुदबुद विलीन हो चुपके
पा जाता आशय सारा।

- महाकवि पत।

श्रोताओ की भीड

प्रवचना की बाढ है ओर श्रोताआ की भीड है। हमारे मनीषिया ने श्राताओ के दो भेद माने हैं —

प्रवर (उत्तम) और अवर (अधम) प्रवर श्रोता हाते ह - चातक हस शुक और मीन रूप।

चातक श्रोता वे हैं जो पपीहे की तरह केवल भगवान् के स्वरूप म ही रस लते हैं। हस श्रोता वे हैं - जा सुनकर सारग्रहण करते हैं और असार को छोड देते हैं यानी जो नीर-क्षीर-विवक करते हैं। दूध व पानी को बिलगाते हे। 'शुक' जेसे जो पढाया जाता है वही रटता हे और दुहराता है, इस तरह जो श्रवण की हुई यातो को जीवन भर दुहराते ह। भीतर समझते कुछ नहीं। 'मीन' जसे चुपचाप तल म डूबी रहती हे, ऐसे ही जो कथा रस का मौन रहकर रसास्वादन करता हे।

अब आते हैं - अवर श्रोता। वृक वृष ओर उष्ट्र रूप हाते हैं। वृक (भेडिया) जैसे भयकर आवाज कर हरिणा को डराता है उसी प्रकार जो बीच-बीच मे जोर-जोर से बालकर श्राताआ का व्याकुल करता है। वृष कहते हैं - बेल को। उसके सामने चाहे मीठे-मीठे अगूर हा या कडवी ककडी, वह एक सा मानकर ग्रहण करता है। इसी प्रकार जा सार असार का विचार नहीं करता।

उष्ट्र (ऊट) जैसे माधुर्य गुण वाले आम को छोडकर नीम की ही पत्ती चबाता है उसी प्रकार जो सभा म जाकर भगवान् की मधुर कथा का छाडकर ससारी बाता म रमता है वह 'ऊट' श्रोता है।

और ऐसा वक्ता हा जो वस्तु की अपक्षा न रखे। विनम्र हा। सुहृद् हा। तत्व का बाध कराने वाला हा युक्तिया का जानने वाला और श्राताआ का 'मुद मगल' देने वाला हा।

पर, आखे मुद जाने पर

एक अभावग्रस्त व्यक्ति भूख से पीडित हो राज-महल म घुसा। राजा भाज की शय्या के नीच छिप गया। चोरी करने क लिए अवसर ताकता रहा। पर 'चारी करना बुरा हे' - यह शास्त्र ज्ञान उसे चोरी करने से रोकता रहा।

प्रभात हा गया। राजा के स्वागत म शय्या क चारा ओर प्रभात अभिवादन के लिए सेवक सेविकाए सज कर खड थे। राजा उल्लास से भर गया ओर यह श्लोक अचानक वाणी से स्फुटित हुआ -

चेतोहरा युवतय सुहृदोनुकूला
सद् बान्धवा प्रणयगर्भगिरश्च भृत्या ।
वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरलस्तुरगा ।

- हृदय का माहने वाली तरुणिया, अनुकूल मित्र, चारा ओर प्यार भाई बधु दरवाजे पर मदान्मत्त झूमते हाथी और चचल घाडा की हिनहिनाहट।

तीन चरण के बाद श्लोक का चौथा चरण रुक गया। राजा का मन उदास। शय्या के नीचे छिपे चार विद्वान् ने चौथे चरण की पूर्ति की -

सम्मीलने नयनयोर्न हि किञ्चदस्ति।

पर 'आख मुद जाने क बाद ये सब कुछ नहीं।'

आवाज का सुनकर सेवको ने उसको नीचे से निकाला। राजा को जब मालूम हुआ कि यह भूख के मारे चारी की नीयत से घुसा था। शास्त्र ज्ञान ने चोरी से रोका। राजा - 'ला, तेरे ज्ञान ने तुझे मुक्त भी किया ओर लाख मुद्रा स पुरस्कृत भी। मात क सम्मुख बाहरी ठाट सब व्यर्थ। रहती है - कीर्ति।'

पाच अगुलियो के पाच इशारे

किसी ने प्रश्न किया - हाथ म पाच अगुलिया क्या? क्या का उत्तर चाहे हमारे पास न हो पर इन पाचा के इशारा का समझा जा सकता ह। पाच से ही हमारे पच बने ह - य ही हमारी पचायते है। ये अगुलिया पचतत्वा की आर पचभूता स बन ब्रह्माड एव पिड का आर इशारा भी करती है।

पर इन अगुलिया क और भी इशारे है - जो उपयोगी हैं व्यावहारिक है आर जीवन की सार्थकता है।

पहली अगुली - व्यापक बनना ह। अपन को घर म मिला दा। बूढा म, बच्चा म सभी म एकाकार।

दूसरी अगुली - विकसित होना है। अपने धधे के प्रति, व्यवसाय या कार्य के प्रति लगन स लगना हे - यही विकास है।

तीसरी अगुली - एकाकार होना है। समाज प्रकृति, परिवेश सभी क प्रति दायित्व का अनुभव कर अपने का मिलाना है।

चाथी अगुली - बहना हे। शब्द सृष्टि में साहित्य म, सगीत म या कला म बहना है।

पाचवी अगुली - लीन होना ह। अपन म। यही ध्यान है। यही आत्मानविद्धि है। यही हे - ना दाइ सेल्फ।

तो जीवन की समगता है - व्यापक हाना, विकसित हाना एकाकार हाना बहना और लीन होना।

आश्रम मे घी का दीया कैसे!

सेवाग्राम म गाधीजी का जन्म-दिवस मनाया गया। सदा की तरह प्रार्थना-सभा हुई। केवल एक विशपता थी - एक घी का दीया जल रहा था। गाधीजी ने इसे लक्ष्य किया। वे इसे देखत रहे एक टक दखते रह। फिर प्रार्थना म लीन हो गए।

प्रार्थना क बाद प्रवचन आरभ हाने वाला था। सब लाग प्रतीक्षा म थ कि आज बापू क्या सदेश देने वाल ह।

सहसा गाधीजी ने पूछा - 'यह दीया कौन लाया ह?'

कस्तूरबा पास ही बैठी थी कहन लगी - 'मैं लाई हू।'

गाधी - 'कहा से लाई हो?'

कस्तूरबा - 'गाव से लाई हू। आप की वर्षगाठ है न।'

गाधीजी थाडी देर क लिए मान हा गए। फिर गभीर स्वर म बाले - 'आज अगर काई सबस बुरा काम हुआ है तो घी का दीया जलाना। आसपास क गाव के लागबाग ज्वार-बाजरे की सूखी राटी पर चुपडने को तेल तक नहीं पात आर मेरे आश्रम म घी का दीया जल रहा ह। गरीब किसान का जा चीज नसीब न हा उसे हम इस तरह बरबाद कैसे कर सकत हैं?'

प्रवचन म दर्द साकार हो उठा था।

किसान मजदूर व जवान के हिमायती हम जरा इस दर्द के प्रकाश म अपने का तलाशे।

नगर जीवन पर ये चुभते व्यग्य।

महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुतलम्' नाटक के दो ऋषि कुमारो ने जब जनाकीर्ण - भीड भाड वाले नगर को देखा तो कहा -

(क) जनाकीर्ण मन्ये हुतवहपरीत गृहमिव

- इतने लोगो से भरे हुए भवन को देखकर ऐसा जान पडता है, यहा आग की लपट उठी हुई हैं।''

(ख) शुचिरशुचिमिव प्रबुद्ध इव सुप्तम्।

- मुझे ये लोग ऐसे लगते हैं - जैसे पवित्र को अपवित्र लोग लगते हैं या जागे हुए को सोये हुए।

ये नगर के लोग हैं, जो दूसरो को धोखा देने की चाले विद्या के समान सीखते हैं और सत्यवादी कहलाते है।

कालिदास नागर कवि थे, पर मन भारतीय आर्यों का था - जो आश्रमो मे

कविवर नागर जीवन नगर जीवन पर करारा

शीर्षक

सभ्य तो हुए

बसना

आया।

जीवन का यथार्थ

अंत बुरे का बुरा। अनेक उपद्रवी तूफान की तरह आते हैं और बुलबुले की तरह मिट जाते हैं।

यूनान की एक प्राचीन कथा है। स्फिक्स नाम की एक राक्षसी थी, जिसका आधा शरीर नारी का और आधा सिंह का था। वह थीविस के निवासियो को पहेलियां पूछा करती थी और उत्तर न मिलने पर उन्हें खा जाती थी। वहां के निवासियों को यह आकाशवाणी से ज्ञान था जिस दिन सही उत्तर मिल जायेगा, वह आत्मघात कर लेगी।

एक बार उसने प्रश्न किया कि वह कौन सा जानवर है जो प्रात काल चार पैरो से, मध्याह्न मे दो परो से और सध्याकाल मे तीन पैरा से चलता है। इसका उत्तर ईडिपस ने दिया था कि मनुष्य शैशव मे चार पैरा से (घुटनो के बल), जवानी के मध्याह्न म यौवन प्रौढावस्था म दो पैरो से, जीवन की साझ म बुढापे म तीन पैरा से (लाठी के सहारे) चलता है। पहेली का सही उत्तर सुनते ही स्फिक्स ने आत्मघात कर लिया।

यह जीवन का यथार्थ है। पर, हमारी प्रार्थना है – मैं सौ वर्ष अदीन होकर बिना किसी के सहारे जीऊ – इसी मे पुरुपार्थ है।

यहा 'पूरिये' ही 'पूरिये' भरे है

एक राजा क मन मे सच्चे साधुआ का बुलाकर उन्ह भाज दन की इच्छा थी। उसने राजभर मे ढिढोरा पिटवाया कि साधु महात्मा नगर मे पधारे। राजा साहब उनके दर्शन करने व उनको भोज देने के लिए मन म साध पाले थे। तरह-तरह के वश बनाकर साधुआ की जमात आई।

राजा स्वय अपने हाथ से परोस रहे थे ओर साधुओ से आशिष पाकर अपने का भाग्यशाली समझ रहे थे।

एक स्थान पर जाकर राजा जी जरा ठिठककर रुक गए। एक चहरा पहचान सा लगा। वश तो फक्कड का था। रुद्राक्ष की माला गले मे थी। राजा ने गार से देखा ओर उन्हे भान हुआ यह तो अपना चरवादार पूरिया ह। राजा न उसे पहचाना और तेज आवाज म कहा - 'अरे पूरिया? तू - यहा?' पूरिया तत्काल खडा हो गया और आदर अदब से बाला - 'अ दाता! घणी खम्मा यहा ता पूरिये ही पूरिये हे एक को पकडने से क्या होगा?' यानी मुझ पहचान लिया हे - बाकी भी मरे ही भाई बधु हैं।

राजा बुद्धिमान व दूरदर्शी थे। चुप रहे। हम एक दो को 'पूरिया-तू' पर सही तो यह है कि यहा पूरिये ही पूरिये भरे पडे हैं। किस किस का पकडगे। कुएँ मे ही भाग पडी ह - सारा गाव ही उसका पानी पीकर कम वेशी बावला हे। कभी दड ठीक ता कभी सामूहिक माफी - यही रास्ते हैं।

शान्त घर — शान्त विश्व

गृह का अर्थ है, जो हम ग्रहण कर अपनावें। जो दूर से ही हम पुकार कर कहे - आओ मेरी गोद म। इसी शब्द से हमारा गृहस्थाश्रम बना है। गृहस्थ भी आश्रम है - जहा चारो ओर श्रम, परिश्रम या तप का महत्व है।

हमारे धर्माचार्यों ने गृहस्थाश्रम की महिमा का बहुत बखान किया है जो उचित है। गृहस्थाश्रम धन्य क्योकि न्यायपूर्वक धन कमाने वाला, आत्मज्ञान मे निष्ठा रखने वाला, अतिथि सेवा करने वाला, शास्त्र को जानने वाला और निरतर सत्य बोलने वाला गृहस्थ भी मुक्त हो जाता है -

न्यायार्जित धनस्तत्वज्ञान निष्ठाऽतिथि प्रिय ।
शास्त्रवित्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते॥

हमारे आचार्यों ने 'धन्योगृहस्थाश्रम ' कहकर इसका एक मार्मिक मनोहर चित्र अकित किया है -

जहा आनददायक सदन है, जहा बुद्धिमान पुत्र हे, जहा स्त्री मृदुभाषिनी हे जहा अच्छे मित्र हें खूब धन है, जहा स्त्री के प्रति प्रेम हे, जहा आज्ञाकारी सेवक हैं, जहा अतिथि सत्कार है, जहा ईश्वर का पूजन नित्य होता है, जहा मधुर भोजन रखे रहते हें और निरतर सज्जनो का समागम है - धन्य है - ऐसा गृहस्थाश्रम।

पर आज घर कम हो रहे है - बढ रहे हैं - होटल, सराय। स्वीट होम के स्थान पर 'हाउस' - महल, हवेलिया।

शात सतुष्ट घर का अर्थ है - विश्व-शाति। आत्म-शाति।

'गीता-माता' की गोद मे कैसा भय !

गीता भगवान् की वाङ्मयी काया है जो सदा रहने वाली है। इसका प्रभाव जिस पर पडे, जहा पडे वही गीता का प्रिय है।

सन् १८४८ यानी डेढ सदी पहल सुनसान म एकाकी जीवन बितान वाले महापुरुष हेनरी डेविड थोरो (ऋषि-कल्प) की यह अनुभूति मार्मिक है -

'प्रत्येक प्रात काल मे भगवद्गीता क विराट् विश्वात्पत्ति सबधी दर्शन म अपनी बुद्धि का अवगाहन करता हू, जिसकी रचना हुए कितने ही देववर्ष बीत चुके है आर जिसकी तुलना मे हमारा यह आधुनिक ससार और साहित्य बडा तुच्छ और महत्त्वहीन प्रतीत होता है। इसका विराटत्व हमारी धारणाओं स इतना दूर है कि मुझे सदेह होता है कि कहीं यह दर्शन अस्तित्व के किसी पूर्व काल स सबधित ता नहीं है। — वालडेन का विशुद्ध जल गगा के पवित्र जल मे मिल जाता है।'

यह वही थोरो है, जो कहता था - 'कैसा भय जब में गीता माता की गोद मे बैठा हू' - या कह कर जो अपने अश्रुओ से गीता का अभिषक कर अभय हो जाया करता था।

असल मे जा साधता है, वही सिद्ध है स्वामी है - यहा न देश है न काल है, न जाति है।

जो करसी उणरी हुसी आसी अणनूतीहै।
आ नही किणरै बापरी भगती रजपूतीहै।

जा करेगा उसकी होगी। ये चीजे बिना बुलावे उसकी हागी। भक्ति आर क्षात्रशक्ति किसी के बाप की नहीं। कोई वश परपरा नही।

पापी — पाप के मुँह मे

तालाब के किनारे बगुला उदास बैठा था। मछलियों को अचरज हुआ। पूछा - मुह लटकाए क्यो हो? बगुला - 'प्यारी मछलियो! मैने पाप किया है - तुम्हे निगल कर अब पछता रहा हू। पाप का प्रायश्चित करना है। बात यह है - यह तालाब सूखने के कगार पर है। पास मे ही बडा भारी तालाब है। तुम विश्वास करो तो तुमको एक-एक को ले जाकर तालाब मे विहार करने छोड दू।'

एक कानी मछली ने कहा - 'तुम्हारा क्या भरोसा! तुम यदि मुझे ले जाकर, उस तालाब को दिखा दो और मुझे वापस लाकर छोड दो तो आगे भरोसा जमे।'

बगुला आसू बहाता पास आया। कानी मछली को चोच मे दबाया। उडा। तालाब दिखाकर उस मछली को साक्षी बनाकर लौट आया। कानी मछली - 'मेरी बहनो! यह बगुला ठीक कहता है। मैने पानी से लबालब भरा तालाब देखा है। इसने मुझे प्यार से ले जाकर सब दिखाया।'

भोली मछलिया झासे मे आ गई। वह एक-एक को चोच से पकड कर उडता। दूर पेड पर बैठ कर गट कर जाता। यो मछलियो को लेता गया खाता गया। अब तालाब मे बचा - एक ककडा। बगुला का मन केकडे के लिए ललचाया। ककडे ने कहा - 'तुम्हारी गर्दन को पकडकर मै जा सकता हू, जिससे गिरने का खतरा न रहे।' बगुला पागल सा हो रहा था। ककडे ने बगुले की गर्दन को पकडा। बगुला उडा। ककडा 'यहा कहा! तालाब तो दूर है।' केकडे ने बगुले की गर्दन दबोची। वह मर कर नीचे गिर पडा। धोखेबाज को आखिर उसका पाप खा जाता है।

प्रशसा — निरुत्तर

सारिपुत्र - 'भत! मेरा विश्वास है कि आप स बुद्धिमान महात्मा न हुआ है न है और न होगा।'

बुद्ध ने शात निर्विकार भाव से सुना।

युद्ध न पूछा - 'निस्सदह सारिपुत्र तुमन इसक पूर्व क समस्त बुद्धा को जान लिया हागा।'

'नहीं स्वामी।'

'तब क्या भविष्य क बुद्धा का जानत हा?'

'नहीं भते।'

'तब कम-से-कम मुझे जानते हा और मरे मन का सपूर्णतया परख चुक हा।'

'ऐसा भी नहीं - शास्ता।'

यह निरुत्तर करने वाला वार्तालाप हम कहा चेताता है - जब हम किसी की गुरु को या किसी विशिष्ट व्यक्ति की प्रशसा म अत्युक्ति का ही नहीं, अभावोक्ति का प्रयोग करते हैं। प्रशसा की अतिशयता हमे भुलाती है और दृष्टि को धूमिल करती है।

प्रशसा हो - समुचित भन और शालीन।

बाण छूट न सका

राजा भर्तृहरि शिकार की तलाश मे दूर जगल म निकल गए। अत म एक हरिण मिला। जैस ही राजा न बाण सन्धाना ता लगा हरिण की आखे कुछ कह रही हैं - मान भाषा म - अशब्द शब्दा म - ह राजा भरथरी।

सींग दीज्यो गोरखनाथ नै, घर घर अलख जगाय।
खाल दीज्यो साधु सत नै, लगा म्हानै विछाय॥
नैना दीज्यो चचल नार कृ, राखे ली घुघटे छिपाय।
आख दीज्यो भल घर नार कृ, रेवेली पथ निहार।
जिनसे पवितर हुई जाऊ - राजा भरथरी।

हे राजन! मरा शिकार चाहे कर। पर, इतना अवश्य कर। मरे सींग गारख जोगी का दे, जिनसे व सींगी बजा बजा कर अलख जगावे। मेरी छाल साधु सत के काम आव। मरे चचल नैन चचलनारी को सौंप आर भाली आख घर गृहस्थी की भोली नारी के लिए हो। यानी सभी के काम मे आऊ - यह भावना जेसे मृग की मुद्रा म प्रकट थी।

इसका नतीजा? राजा भर्तृहरि का बाण प्रत्यचा से छूट न पाया आर वे जागी भरथरी बनने की राह के राहगीर बन बैठे।

प्रशसा — निरुत्तर

सारिपुत्र - 'भते! मेरा विश्वास है कि आप स बुद्धिमान महात्म न हुआ है, न है और न होगा।'

बुद्ध ने शात निर्विकार भाव से सुना।

बुद्ध ने पूछा - 'निस्सदेह सारिपुत्र तुमन इसक पूर्व क समस्त बुद्धा को जान लिया होगा।'

'नहीं, स्वामी।'

'तब क्या भविष्य के बुद्धा को जानते हो?'

'नहीं भते।'

'तब कम-से-कम मुझे जानते हा और मरे मन का सपूर्णतया परख चुके हा।'

'ऐसा भी नहीं - शास्ता।'

यह निरुत्तर करने वाला वार्तालाप हमे कहा चेताता है - जब हम किसी की, गुरु की या किसी विशिष्ट व्यक्ति की प्रशसा म अत्युक्ति का ही नहीं, अभावाक्ति का प्रयोग करते हैं। प्रशसा की अतिशयता हमे भुलाती है और दृष्टि को धूमिल करती है।

प्रशसा हो - समुचित, सतुलित शोभन ओर शालीन।

चितन मनन

बाण छूट न सका

राजा भर्तृहरि शिकार की तलाश मे दूर जगल म निकल गए। अत म एक हरिण मिला। जैसे ही राजा न बाण सन्धाना ता लगा हरिण की आख कुछ कह रही हैं - मौन भाषा म - अशब्द शब्दो म - ह राजा भरथरी।

सींग दीज्यो गोरखनाथ नै, घर घर अलख जगाय।
खाल दीज्यो साधु सत नै, लेगा म्हानै बिछाय॥
नैना दीज्यो चचल नार कू, राख ली घूघटे छिपाय।
आख दीज्यो भल घर नार कू, रेवेली पथ निहार।
जिनसे पवितर हुई जाऊ - राजा भरथरी।

ह राजन! मरा शिकार चाहे कर। पर, इतना अवश्य कर। मरे सींग गारख जोगी का द जिनसे व सींगी बजा बजा कर अलख जगावे। मरी छाल साधु सत क काम आवे। मरे चचल नेन चचलनारी का सौंप आर भाली आख घर गृहस्थी की भाली नारी के लिए हा। यानी सभी के काम म आऊ - यह भावना जैसे मृग की मुद्रा मे प्रकट थी।

इसका नतीजा? राजा भर्तृहरि का बाण प्रत्यचा स छूट न पाया आर वे जागी भरथरी बनने की राह के राहगीर बन बैठ।

प्रशसा — निरुत्तर

सारिपुत्र - 'भते। मेरा विश्वास है कि आप से बुद्धिमान महात्मा न हुआ है, न है और न हागा।'

बुद्ध ने शात निर्विकार भाव से सुना।

बुद्ध ने पूछा - 'निस्सदेह सारिपुत्र तुमने इसके पूर्व क समस्त बुद्धा को जान लिया होगा।'

'नहीं स्वामी।'

'तब क्या भविष्य के बुद्धा को जानते हो?'

'नहीं भत।'

'तब कम-से-कम मुझे जानते हा और मर मन को सपूर्णतया परख चुके हो।'

'ऐसा भी नहीं - शास्ता।'

यह निरुत्तर करने वाला वार्तालाप हमे कहा चेताता है - जब हम किसी की गुरु की या किसी विशिष्ट व्यक्ति की प्रशसा मे अत्युक्ति का ही नहीं, अभावोक्ति का प्रयोग करते हैं। प्रशसा की अतिशयता हमे भुलाती है और दृष्टि को धूमिल करती है।

प्रशसा हो - समुचित, सतुलित शोभन आर शालीन।

स्वराज्य का अर्थ — अभय

राजा दुष्यत शिकार के लिए गए। रास्ते म कण्व का आश्रम पडा। वहा काफी हिरन थे। राजा एक हिरन के पीछ दौडा। भयभीत हिरन की आवाज सुनकर आश्रम का एक लडका आया और राजा से कहने लगा कि 'आश्रम मृगाऽय न हन्तव्यो न हन्तव्य ।' एक लडका हिम्मत से राजा को आदेश दे रहा है कि 'हे राजन्! इस आश्रम के मृग को नहीं मार सकते।'

'अन्याय के सामने डटकर खड हो सके, इसी का नाम 'स्वराज्य' है।' — विनोबा साहित्य भाग १६ पृष्ठ ९१

बाबा की दृष्टि मे 'स्वराज्य' का भूलभूत अर्थ हे अभय, अन्याय के विरुद्ध डटकर खडे होने की हिम्मत। हर कोई निर्भयता महसूस करे, हर कोई समझे कि मुझ पर कोई अन्याय नहीं कर सकता और अन्याय हुआ भी तो मेरे पक्ष मे धर्म है न्याय है, मुझे भय का कोई कारण नही।

ऐसी निर्भयता जिस देश मे है उस देश म स्वराज्य है।

रास्ता तो यही पडा हे

राजा भाज व माघ पडित रास्ता भूल गए। घनघोर जगल। माघ ने कहा - राजन्! जो बुढिया बेठी हैं - उससे रास्ता पूछ।

दोना - 'राम राम डोकरी माई।'

डोकरी - 'राम राम बीरा।'

दाना - 'यह रास्ता किधर जाता हे?'

डोकरी - 'यह रास्ता तो यहीं पडा हे, कहीं नहीं जाता आने जाने वाले ही जाते हैं। पता नहीं कितने गए।

तुम दाना कौन हो?'

दोना - 'हम हैं - बटाऊ।'

डोकरी - 'बटाऊ - दो। सूरज या चाद? तुम सच बोलो कौन हो?'

दोना - 'हम हैं - पाहुने।'

डोकरी - 'पाहुने दो। एक तो धन, दूसरा यावन। तुम कौन से हो?'

दोना - 'हम हैं राजा।'

डोकरी - 'राजा दा, एक इद्र एक यम। तुम सच बोला।'

दोना - 'हम हैं - भरखमा (क्षमावान्)।'

डोकरी - 'क्षमावान दा, एक धरती दूसरी स्त्री। तुम कौन?'

दोनो - 'हम है चतुर।'

डोकरी - 'चतुर दो - एक अन्न, दूसरा पानी। तुम सच बोलो।'

(सारी चतुराई अन्न पानी के पीछे)

दोना - 'डोकरी मा। तू ही बता - हम कौन हें?'

डोकरी - 'यह है राजा भाज हे और तू है माघ पडित। बस इसी मार्ग से चले जाओ।'

डोकरी के सामने अपनी पडिताई और बडाई भूल कर दानो उसके चरणा मे गिर पडे।

स्वराज्य का अर्थ — अभय

राजा दुष्यत शिकार के लिए गए। रास्ते म कण्व का आश्रम पडा। वहा काफी हिरन थे। राजा एक हिरन के पीछे दौडा। भयभीत हिरन की आवाज सुनकर आश्रम का एक लडका आया ओर राजा से कहने लगा कि 'आश्रम मृगोऽय न हन्तव्यो न हन्तव्य ।' एक लडका हिम्मत से राजा को आदेश दे रहा है कि 'हे राजन्! इस आश्रम के मृग को नहीं मार सकते।'

'अन्याय के सामने डटकर खडे हो सके, इसी का नाम 'स्वराज्य' है।' — विनोबा साहित्य भाग १६ पृष्ठ ९१

बाबा की दृष्टि मे 'स्वराज्य' का भूलभूत अर्थ है, अभय, अन्याय के विरद्ध डटकर खडे हाने की हिम्मत। हर काई निर्भयता महसूस करे हर कोई समझे कि मुझ पर कोई अन्याय नहीं कर सकता और अन्याय हुआ भी तो मेरे पक्ष म धर्म है न्याय है मुझ भय का कोई कारण नहीं।

एसी निर्भयता जिस दश मे है, उस देश म स्वराज्य है।

रास्ता तो यही पडा है

राजा भाज व माघ पडित रास्ता भूल गए। घनघोर जगल। माघ ने कहा - राजन्! जो बुढिया बैठी है - उससे रास्ता पूछ।

दोना - 'राम राम डोकरी माई।'

डोकरी - 'राम राम बीरा।'

दोना - 'यह रास्ता किधर जाता हे?'

डोकरी - 'यह रास्ता तो यहीं पडा हे, कहीं नहीं जाता आने जाने वाले ही जाते हैं। पता नहीं, कितने गए।

तुम दोना कौन हो?'

दोनो - 'हम हैं - बटाऊ।'

डोकरी - 'बटाऊ - दो। सूरज या चाद? तुम सच बोलो, कौन हो?'

दोना - 'हम है - पाहुने।'

डोकरी - 'पाहुने दो। एक तो धन दूसरा यावन। तुम कौन से हो?'

दोनो - 'हम हैं राजा।'

डोकरी - 'राजा दो एक इद्र एक यम। तुम सच बोलो।'

दोनो - 'हम हैं - भरखमा (क्षमावान्)।'

डोकरी - 'क्षमावान दो एक धरती दूसरी स्त्री। तुम कौन?'

दोना - 'हम हैं चतुर।'

डोकरी - 'चतुर दो - एक अन्न दूसरा पानी। तुम सच बोला।'

(सारी चतुराई अन्न पानी के पीछे)

दोना - 'डोकरी मा! तू ही बता - हम कान हैं?'

डोकरी - 'यह हे राजा भोज है और तू है माघ पडित। बस इसी मार्ग से चले जाओ।'

डाकरी के सामने अपनी पडिताई और बडाई भूल कर दाना उसके चरणा मे गिर पडे।

गुमान का भार

'गुमान' का भूत कैस धर दबोचता है, पता ही नहीं चलता। जब मन म आता है कि 'मैंने कितन बडे कार्य किए हैं, पर मुझे गुमान नहीं अहकार नहीं? साधक को पता ही नहीं, यहा गुमान सूक्ष्म बनकर खतरनाक खेल खेल रहा है। फिर विनम्रता का स्वर उभरता है – कहता फिरता है – 'मुझे जरा भी अभिमान नहीं, मै तो आपके चरणा की धूलि हू।' यह विनम्रता छद्म रूप से अहकार का विस्फाट है।

असल म जब कर्तापन न रहे, भोक्तापन न रहे तो मौन सधता है और भीतर का 'द्रष्टापन' जगता है। फिर साधक देखता है – केवल देखता है – सजग होकर, साक्षीभाव उभरता है।

इसी 'मैं' पन के भार को उतारने के लिए भक्त कहता है –

'म्हारी ज्ञान गुमान नी गाठडी उतरावो शिरे थी आज।
म्हारी पुस्तक पोथी नी पोटली उतरावो शिरे थी आज।
बोझो खेच-खेची हापै छै, है यु आखे अधारा घेराय।'

(हे प्रभु! मेरे ज्ञान गुमान के अहकार और ममता का गट्ठर अब सिर पर से उतरवा दीजिए। पुस्तक-पोथी का बोझ ढोते हापने लगा हू। आखो के सामने अधेरा छा रहा है। थोडा विश्राम कर सकू, चेन की सास ले सकू।)

क्या यह सच हे?

सूरज उगा है इसके लिये विज्ञापन की जरूरत नहीं। न प्रचार की न मुनादी की। 'कस्तूरी की सुगध' स्वत ही फैलती हे - यदि कोई सौगध भी खावे कि कस्तूरी नहीं है, पर उसकी गध बिना कह सब कह दती है। यह सच हे -

'न हि कस्तूरिका गध शपथेन निवार्यते।'

स्वराज्य को आए आधी सदी हुई उसे यदि अखबार कहे रेडियो दूरदर्शन कहे, पुराने चित्र कह और हमारा जीवन न कहे, राष्ट्र का चरित्र न कहे आचरण न कहे व्यवहार न कहे हमारे कदम न कह, हमारी आख न कह ता फिर सब कथन अकारथ।

साधारण जन मानस आखिर कब तक कहेगा -

हम कफस वालो को
इतना तो बता दे कोई
क्या यह सच है कि
गुलिस्ता म बहार आई है।

ऊँघती जिन्दगी

संत भीखण जी का प्रवचन चालू था। प्रमुख श्रोताओ म आसोजी आते और आगे जम कर बेठते। वे बीच-बीच मे ऊँघने लगते। झपकी ले लेते। भीखणजी न प्रवचन के बीच म कहा - 'क्यो आसाजी! सो रहे हा?' आसाजी चौंकर बोल उठे - 'नहीं-नहीं, सोता नहीं हू।' थोडी देर म आसोजी ओर ऊँघने लगे। भीखणजी 'क्या आसोजी! नीद आ रही हे?' आसोजी - 'नहीं-नहीं भगवन्।'

भीखणजी पूरे विनादी भी आर सूझबूझ वाले सत थे। अब की बार कठोर परीक्षा ली। वे कहने लगे - 'क्या आसोजी! जीवो हो?' आसोजी उसी तरह नीद म ही बोल उठे - 'नहीं-नहीं।' इतने मे सभी श्राता खिलखिला कर हसने लगे। अब आसोजी को होश आया ओर वे फिर सावधान हो गए।

प्रश्न प्रवचन सुनने का नहीं है। हम तो सारी जिदगी या ही ऊघते, खुमारी म, प्रमाद म, बिना जगे नींद-ही-नींद म खो देते हैं। फिर कहते हैं - 'धाखे-ही-धोखे ढहकाया।' जग, जीवन को सभाले और लक्ष्य विद्ध करे। कहीं ऐसा न हो कि हम पछतावे मे कहना पडे -

आछे दिन पाछे गए, किया न हरि से हेत।
अब पछतावे होत का, चिडिया चुग गई खेत।'

'गई सो गई-अब राख रही को।' यही चेतावनी हमारा सबल हो।

भीतर झाँको

आगे बढने की लालसा सबमे होती हे पर बढ नहीं पाते। क्या? इसका उत्तर है – हम अपने प्रति जरूरत से ज्यादा उदार ह दयालु हें और क्षमाशील हे।

जो भी व्यक्ति अपने चरित का सही निष्पक्ष विवेचक होगा - उसे आगे बढने से कोई रोक नहीं सकता।

बेन फ्रेकलिग ने देखा कि उसमे तेरह गभीर दोप हैं, जिनमे तीन प्रमुख हें – (१) समय नष्ट करना (२) निकम्मी बातो मे उलझना (३) लागा की बातो को काटना।

फ्रेकलिग ने अपने को बदलने का निर्णय किया। एक दाप को दूर करने के लिए वह सात दिन तक कोशिश करता सात दिन बाद विचार करता कि कहीं असावधानी ता नहीं हुई? इस प्रकार उसने अपने दोपो का निकाला – जिससे वह प्रभावशाली व लोकप्रिय बन सका।

इसलिए आवश्यकता हे कि हम अपनी तारीफ सुनकर फूले नहीं – उनसे भी शिक्षा ग्रहण कर जो हमारा विरोध करते हैं हमारी अवज्ञा करते हैं। चाहे हम सत कबीर की तरह निदक का नजदीक न रख सक और उसके लिए आगन मे कुटी न बना सक।

सारथी कौन है?

प्रश्न है - हमारे जीवन रथ का सारथी कौन है? अहंकार! - डूबोगे। लोभ! - भटकोगे। ईर्ष्या! - जलोगे। द्वेष - घुट घुट कर मरोगे। मोह! - तड़पोगे।

पर, एक बार एक भ्रमित ने कहा - 'वासुदेव! मैं प्रपन्न हूं। शरणागत हूं।' वासुदेव - 'तो तू रथी है, रथ का मालिक। अब मैं हूं - तेरा सारथी, मुझे संभला लगाम।'

यह पार्थ का सौभाग्य था कि उन्हें सारथी के रूप में वासुदेव मिले। हम निराश न हों, वासुदेव तो सर्वव्यापक है। हमारे लिए भी हाजिर। एक शर्त है -

हम कार्य करें, करने योग्य कार्य करें। प्रेम से करें। द्वेष से न करें। करुणा का भाव रखें। मैत्री को संभालें। 'मैं' न हो, 'मेरा' न हो। किसी एक गुण को अपनाया तो समझो हमारे जीवन रथ का सारथ्य - वासुदेव के हाथ में है। यही सफलता का 'गुर' है।

'मेरे गुलाम के ये गुलाम।'

एक सत थे। निर्लोभ, वैरागी और अलमस्त। न किसी का लेना न किसी का देना। फिर भी जहा सुगध होती है, भौंरे पहुच जाते हैं। उनके चारा ओर चेला और भक्ता का जमघट लग गया था। सत से जितना बनता - उन्हे सत्सग के रूप म अनुभव के अमृत की घूटे पिलाते। पर, भक्ता व चेला का इस बात की बडी पीडा थी कि नगर का राजा इनके दर्शन के लिए अभी तक नहीं आया। वह राजा दूसरे किसी तान्त्रिक योगी के चक्कर मे था। चेले चाहते थे - राजा देखे पीतल और सोने के अतर को।

सत को जब मालूम हुआ कि चेले बडे बेचैन है - इस बात के लिए। सत ने कहा - 'देखो, कोशिश करके किसी का यहा मत लाओ। और जिस को तुम दुनियाई निगाह से बडा समझते हो - वह तो मेरे गुलाम का गुलाम है। उसकी हैसियत ही क्या है।'

चेलो की समझ मे यह बात नहीं आई कि राजा कैसे गुलाम का गुलाम हो सकता है।

सत ने उनकी उत्सुकता को शात करते हुए कहा - 'देखो, मन मेरे वश म है यानी मन मेरा नौकर है मेरा गुलाम है। और ये राजा तो प्राय मन के नोकर होते हे। रात-दिन इच्छाआ के कामनाआ के चक्कर मे रहते हैं। इसलिए मेरे गुलाम के भी गुलाम हैं।'

सारथी कौन है?

प्रश्न है – हमारे जीवन रथ का सारथी कौन है? अहकार। – डूबोगे। लोभ। – भटकोगे। ईर्ष्या। – जलोगे। द्वेष – घुट घुट कर मरोगे। मोह। – तडपोगे।

पर, एक बार एक भ्रमित ने कहा – 'वासुदेव। मैं प्रपन्न हू। शरणागत हू।' वासुदेव – 'तो तू रथी है, रथ का मालिक। अब मैं हू – तेरा सारथी, मुझे सभला लगाम।'

यह पार्थ का सौभाग्य था कि उन्हे सारथी के रूप मे वासुदेव मिले। हम निराश न हो, वासुदेव तो सर्वव्यापक है। हमारे लिए भी हाजिर। एक शर्त है –

हम कार्य कर, करने योग्य कार्य करे। प्रेम से करे। द्वेष से न करे। करुणा का भाव रखें। मैत्री को सभालें। 'मैं' न हो, 'मेरा' न हो। किसी एक गुण को अपनाया तो समझो हमारे जीवन रथ का सारथ्य – वासुदेव के हाथ मे है। यही सफलता का 'गुर' है।

बचपन खोते हमारे ये बच्चे।

ये महगाईजदा बच्चे ह शायद
खिलान दखकर मचले नहीं हैं।

— असदरजा

यह किसी शायर क मात्र जज्बात नहीं हे जिदगी के एक दर्दनाक हादस की इबारत हे। युग की निर्मम त्रासदी की सही तस्वीर हे।

बच्चे तभी बच्चे हें, जब वे किसी बात के लिए मचल उठ। 'बालहठ' शिशु मनोविज्ञान की बुनियाद ह। यदि बच्चे रातदिन सिहरे रहे दबे रहे आतक के मारे डरे सिकुडे रहे तो लगगा 'बचपन' आया ही नहीं। सामने खिलौने हा ओर बच्चे मचले नहीं तो लगता हे - महगाई की मार ने महगाई के रात दिन कमरतोड वजन ने-केवल अभिभावको का ही डराया ऐसा नही अपितु इससे बच्चे भी अपने बचपन से हाथ धो रहे हैं।

जिस समाज म बचपन गया - वहा केसा केशार्य केसा तारण्य केसा प्राढत्व-वहा तो हागा कवल बुढाया। यही नियति हे।

बालश्रम बचपन का हत्यारा।

बढता पुस्तको का भार-बचपन का हत्यारा।

अस्वाभाविक महगाई ही नहीं - सभी प्रकार की सामाजिक अव्यवस्था - उगते राष्ट्र के लिए घातक ह।

शिक्षा — सुधरने का अवसर

एक आश्रम था। नामी गुरु थे। शिष्या की भरमार थी। एक दिन एक शिष्य चारी करते पकडा गया। गुरु के सामने वह लाया गया। गुरु ने उससे कुछ भी नहीं कहा।

मारे शिष्य इस बात पर नाखुश थे। कई दिनो बाद उसे फिर चोरी करते पकडा। शिष्या न कहा - 'गुरुदव। आप यदि इस चोर को दड नहीं देते हें या निकालते नहीं ह तो हम इस अनैतिक आश्रम म साधना नहीं करेगे।'

गुरु - 'दखिए, आप सब जानते हैं, अच्छे-बुरे को पहचानते हैं। सही क्या है गलत क्या है - इसका आपको ज्ञान हे। आप ओर जगह जाकर, कहीं जाकर अध्ययन कर सकते ह।

पर, यह बचारा अबोध है, अपना हित भी नहीं जानता। में इसे समझाने का सुधारने का मौका नहीं दूगा, कौन देगा। म इसे अपने पास रखूगा। आप जैसा चाहो, वैसा करो। आप लोगो की मर्जी।'

चौर की आखो से अनजान ही आसुआ की धारा बह निकली और उस धारा मे चोरी की भावना बहकर न जाने कहा तिरोहित हो गई।'

सारे शिष्य इस दिव्य दृश्य को अभिभूत हो देखते रहे।

अपूर्णता का अनुभव — विकास का सोपान

चार डग हमने दिए तो क्या हुआ
है अभी मैदान कोसो ही पडा

— हरिऔध

एक मूर्तिकार था। जहा भी वह किसी पत्थर का देखता, वह अपने भीतर छिपे किसी देवता को पशु-पक्षी को या किसी अप्सरा को दिखा देता। वह हथौडी ओर छैनी लेकर अपनी स्वप्निल आखो से तराशने बैठ जाता। मूर्ति बन जाती। अनगढ पाषाण मे जीवन का स्पदन भर जाता। लोग प्रशसा करते।

पर, बनी हुई मूर्ति शिल्पी को उसकी कमिया की ओर इशारा करती, उसकी कल्पना को नए शिल्प-शैली के दर्शन कराती वह प्रफुल्ल भाव से नए तक्षण की ओर प्रवृत्त हो जाता। प्रत्येक सृजन न नए सृजन की ओर नए आयाम छूने के लिए उसे ललचाया।

पर, आज शिल्पी न एक मूर्ति बनाई। कोशिश करने पर भी वह मूर्ति उसे कोई भी कमी दिखाकर प्रेरित न कर सकी। वह शिल्पी फूट-फूटकर रोने लगा। लोग विस्मित थे। शिल्पी ने अत मे कहा - 'लगता है मेरी प्रगति के द्वार बद हा गए हैं। मेरी सूक्ष्मदृष्टि कुठित हो गई है।' सचमुच बाद मे वह शिल्पी अपने को दुहराता भर रहा। अपूर्णता का अनुभव ही विकास का सोपान है।'

भेद की दीवारे दरक गई

एक फकीर किसी गुरु की तलाश मे इधर उधर घूमता था। वह किसी बाजार की गली से गुजर रहा था। वहा ग्राहक और दूकानदार मे तकरार हो रही थी।

ग्राहक – 'तुम्हारी दूकान म जो बढिया से बढिया मास हो वह मुझे दो।'

'मेरी दूकान मे हर चीज बढिया है।' दूकानदार ने विनम्रता से कहा।

ग्राहक – 'हर चीज बढिया।'

ग्राहक – 'यहा पर हर चीज बढिया है। एक सी बढिया है।' फकीर के काना मे ये स्वर गूजने लगे –

'हर चीज बढिया सभी बढिया।'

ये स्वर मन म उतरे बुद्धि मे प्रकाशित हुए – 'यहा सभी सुदर, सभी निर्मल सभी आत्मरूप ब्रह्मरूप – एक से।

फकीर मे आत्म बाध की अनहद गुजार गूजने लगी। भेद की दीवारें दरक गईं। अखड की ध्वजा फहरान लगी।

अपूर्णता का अनुभव — विकास का सोपान

चार डग हमने दिए तो क्या हुआ
है अभी मैदान कोसो ही पडा

— हरिऔध

एक मूर्तिकार था। जहा भी वह किसी पत्थर को देखता, वह अपने भीतर छिपे किसी देवता को पशु-पक्षी को या किसी अप्सरा को दिखा देता। वह हथौडी और छैनी लेकर अपनी स्वप्निल आखो से तराशने बैठ जाता। मूर्ति बन जाती। अनगढ पाषाण मे जीवन का स्पदन भर जाता। लोग प्रशसा करते।

पर, बनी हुई मूर्ति शिल्पी को उसकी कमिया की ओर इशारा करती उसकी कल्पना को नए शिल्प-शैली के दर्शन कराती, वह प्रफुल्ल भाव से नए तक्षण की ओर प्रवृत्त हो जाता। प्रत्येक सृजन ने नए सृजन की ओर नए आयाम छूने के लिए उसे ललचाया।

पर, आज शिल्पी ने एक मूर्ति बनाई। कोशिश करने पर भी वह मूर्ति उसे कोई भी कमी दिखाकर प्रेरित न कर सकी। वह शिल्पी फूट-फूटकर रोने लगा। लोग विस्मित थे। शिल्पी ने अत म कहा - 'लगता है मेरी प्रगति के द्वार बद हो गए हैं। मेरी सूक्ष्मदृष्टि कुठित हो गई है।' सचमुच बाद मे वह शिल्पी अपने को दुहराता भर रहा। अपूर्णता का अनुभव ही विकास का सोपान है।'

चितन मनन

राम की लम्बी यात्रा — रामायण

भगवान् राम ने रामेश्वर म मेतु बना कर लका पर चढाई की। सेतु बध रामेश्वर मे मेतु बना ह - पाषाण खडा से। पर यदि हम गभीरता स विचार कर ता भगवान् राम ने अपनी लीला से जो सेतु बनाया ह - वह ता चिन्मय सेतु ह, (ज्ञान का प्रेम का मिलन का सेतु) यही इस कथा की अलौकिकता ह।

यह मेतु है - पिता-पुत्र का, भाई-भाई का स्वामी-सेवक का, राजा-प्रजा का शहर-ग्राम का, पडित-अपडित का, गृहस्थ-वानप्रस्थ का। ऐस सेतु को बनाने के लिए भगवान् राम ने अपन भाइ व पत्नी के साथ - नगे पैरा स, काटा से भरे पथ पर - वन-वन, डगर-डगर अयाध्या से सुदूर लका तक विध्य को लाघ कर पदयात्रा की। उपेक्षिता, पीडिता व त्रस्ता की रक्षा करते हुए - एक लबी यात्रा। यानी 'अयन' इसी का नाम है - राम + अयन = रामायण।

आइए, हम भी रामायण को बैठकर केवल गावे नहीं पढे नहीं - जरा आसपास घूमकर उपेक्षिता व अभाव ग्रस्ता की यदा-कदा सुध ल। रामायण जीने का ग्रथ है - कारा पढने सुनने मात्र का नहीं।

हाकिम! अन्धा मत हो

न्याय अधा होता है, बहरा होता है। यह भी न्याय की तुला को सीधा रखने का एक तरीका है। पर, भारत की मान्यता है कि न्याय या न्यायाधीश चार आखो का होता है - यह कथन मार्मिक और प्रभावी है।

सत कवि मग्रामदासजी महाराज का यह कुडलिया हमारे न्यायालयो मे सदा उत्कीर्ण रहना चाहिए - हृदय-पट पर भी चेतावनी क ये स्वर स्वागतयोग्य व स्मरणीय हैं -

सुण हाकिम! सग्राम कहे, आधो मत हो यार।
दूजा रै दो आखिया, थारै चहीजै चार॥
थारै चहीजै चार, दोय देखण कू बारै।
दोय हिये रै माय, ताहि सो न्याय निहारै॥
जस अपजस रहसी अखी, समय बार दिन चार।
सुण हाकिम! सग्राम कहे, आधो मत हो यार॥

ज्ञान के चक्षुआ मे सत्य का दर्शन ह जिस सत्य म करुणा सागर भगवान् की करुणा का भी निवास हे। यही सुराज्य की भूमिका है। स्वराज्य के बाद सुराज्य - यही हमारा गतव्य है।

राम की लम्बी यात्रा — रामायण

भगवान् राम ने रामेश्वर म सेतु बना कर लका पर चढाई की। सतु बध रामेश्वर म सेतु बना ह - पाषाण खडा स। पर यदि हम गभीरता स विचार कर तो भगवान् राम न अपनी लीला म जा सतु बनाया ह - वह ता चिन्मय सेतु ह, (ज्ञान का, प्रेम का, मिलन का सेतु) यही इस कथा की अलाकिकता ह।

यह मेतु है - पिता-पुत्र का भाई-भाई का स्वामी-सेवक का, राजा-प्रजा का शहर-ग्राम का, पडित-अपडित का गृहस्थ-वानप्रस्थ का। एसे सेतु को वनाने के लिए भगवान् राम ने अपने भाई व पत्नी के साथ - नगे परा स काटा स भरे पथ पर - वन-वन, डगर-डगर, अयोध्या से सुदूर लका तक विध्य को लाघ कर पदयात्रा की। उपेक्षिता, पीडितो व त्रस्तो की रक्षा करते हुए - एक लबी यात्रा। यानी 'अयन' इसी का नाम ह - राम + अयन = रामायण।

आइए, हम भी रामायण को बठकर केवल गाव नहीं पढे नहीं - जरा आसपास घूमकर उपेक्षिता व अभाव ग्रस्ता की यदा-कदा सुध ल। रामायण जीन का ग्रथ ह - कारा पढने सुनने मात्र का नहीं।

समस्या के हल की तलाश

पानी मे भी मीन पियासी।
माहे सुन-सुन आवत हासी।

— कबीर

संत कबीर यह सुन कर हँस सकते थे कि देखो, मछली पानी में भी प्यासी है। पर यह स्थिति क्या हँसन की है। कोई सहृदय रो भी सकता है, कोई रोष मे भी भर सकता है। पर समस्या का समाधान कहा।

आखिर यह प्रश्न विश्व के सदर्भ मे हमे चिता से ऊपर उठने को कहता है और कुछ कर गुजरने को प्रेरित करता है।

इतनी विशाल धरती, विविध रत्नो से भरी वसुधरा और अथाह रत्नाकर। अनत खुला आसमान और बहती उच्छ्वास प्रकार की हवाए, पाच अगुलिया वाले दो हाथ और उन्नत मस्तक। फिर भी हम मछलिया-अभाव ग्रस्त, दीन-हीन, रुग्ण क्यो? इसका उत्तर है – हमारा सवेदना शून्य होते जाना। विज्ञान की तीव्रता हमें शुष्क करती जाएगी इसे सरस रखने का उपाय?

आज की समस्या है, हृदय पक्ष की का
इससे छुट्टी पाने का रास्ता है, एक ही रास्ता नव
क्योकि जीवन स्पर्धा नहीं, श्रद्धा है। श्रद्धा
सेवा और समर्पण।

पाच अडो की सुरक्षा

महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया। चारो आर रक्त से लथपथ धरती। अर्जुन को लेकर कृष्ण समर भूमि मे विचर रहे हैं। एक जगह देखा 'गज घट' पडा है। कृष्ण – 'जरा, इसे उठाकर देख।' जैस ही उसे उठाया – 'टिटीहरी के पाच छोटे-छाटे बच्चे पख फैलाकर उड चले।'

इतने मे देखा – उन बच्चा की मा कृष्ण के चरणो के पास लोटपोट है। कृष्ण की इस माया को अर्जुन समझ नहीं पाए।

कृष्ण – 'जब बुआ कुती ने कहा कि कृष्ण! महाभारत म चाहे कुछ भी हो, मेरे पाचो बच्चे सुरक्षित रहे – मा की पुकार है। उसी समय उसके पीछे एक चिडिया भी थी। मैंने कहा – 'तथास्तु।'

इसे सुनकर चिडिया भी मुदित मन हो गई। यहीं उसने पाच अडे दिए।

यह वही गज घट अश्वत्थामा कुजर का है, जो कट कर यहा सुरक्षा कवच बनकर इन पाच अडा की रक्षा करता रहा।

अर्जुन नै श्री किसन बतावै,
म्हारी माया कुण लख पावै।
भकता नै मन सू ना बिसर्‌या
घटो उठायो बचिया निसर्‌या॥
टीटोडी कै रुखालो ओ राम!

बुद्धि की एक सीमा है उसके आगे यही रहस्यलोक है।

समस्या के हल की तलाश

पानी मे भी मीन पियासी।
मोहे सुन-सुन आवत हासी।

— कबीर

संत कबीर यह सुन कर हँस सकते थे कि देखो, मछली पानी में भी प्यासी हे। पर, यह स्थिति क्या हँसने की है? कोई सहृदय रो भी सकता है, कोई रोष म भी भर सकता है। पर समस्या का समाधान कहा?

आखिर यह प्रश्न विश्व के सदर्भ मे हमे चिता से ऊपर उठने को कहता है और कुछ कर गुजरने को प्रेरित करता है।

इतनी विशाल धरती, विविध रत्नो से भरी वसुधरा और अथाह रत्नाकर। अनत खुला आसमान और बहती उच्छ्वास प्रकार की हवाए, पाच अगुलिया वाले दो हाथ और उन्नत मस्तक। फिर भी हम मछलिया-अभाव ग्रस्त, दीन-हीन, रुग्ण क्यो? इसका उत्तर है - हमारा सवेदना शून्य होते जाना। विज्ञान की तीव्रता हमें शुष्क करती जाएगी, इसे सरस रखने का उपाय?

आज की समस्या है, हृदय पक्ष की अवहेलना। आस्था का सकट इससे छुट्टी पाने का रास्ता है, एक ही रास्ता है श्रद्धा का नव जागरण। क्योकि जीवन स्पर्धा नहीं, श्रद्धा है। श्रद्धा का मतलब है - तप त्याग, सेवा और समर्पण!

आप आगे चलिए

एक लहर दूसरी लहर से कहती है – 'बहिन! आप आगे चलिए, मैं भी आई, मैं भी आई – पर, पहले आप।'

आज हमारे सामने राष्ट्र की समस्या है – हम सभी छोटे-छोटे दलों के दलदल में फसे हैं – कहीं तो कोई कहे – लो हम पीछे, आप आगे – राष्ट्र के लिए, आज कार्य करें। एक बार चित्रकूट में राजसभा में भरत ने कहा, राम से – 'तात! आप सिंहासन पर विराजे।' राम – 'भरत! तुम संभालो।' न लक्ष्मण तैयार और न भगवती सीता। सभी एक दूसरे के लिए विशाल निष्कंटक राज्य सौंपने को तैयार! हम भूल जाते हैं, इस कथन के महत्त्व को 'वे भी सेवा ही करते हैं, जो प्रतीक्षा करते हैं।'

आज भी चाहे हम राम को मानें चाहे न मानें – जबकि हमारे मानने न मानने से राम के 'रामत्व' का कुछ बिगड़ने वाला नहीं है कहीं से किसी दल में राष्ट्रीय चेतना जगे और सत्ता के पास पहुंच कर – सबसे कहे – आप आगे आए, राष्ट्र के हित में आओ मिलकर कार्य करें।

किसी में तो 'राम बड़े'। क्या सभी का 'राम निकल गया है क्या!' 'वीर विहीन मही मैं जानी' राजा जनक का क्या कोई लक्ष्मण बन प्रतिवाद के लिए खड़ा नहीं होगा।

दर-मुलाई मे मूल्य बढता गया

विद्वान् डाक्टर जानसन पुस्तको की दुकान पर ठीक नौ बजे पहुच जाते थे एक बजे तक वहीं रहते थे। एक ग्राहक ने एक पुस्तक पसद की। ग्राहक - 'इसका मूल्य?' जानसन - 'एक पौंड।' ग्राहक - 'श्रीमन्। इसका मूल्य कुछ कम नहीं।' जानसन - 'एक पौंड पाच पैंस।' ग्राहक - 'मैं तो कम के लिए कह रहा हू।' जानसन - 'एक पौंड दस पेंस।' ग्राहक - 'यह कसा मजाक! बढाते जा रहे हैं मूल्य?' जानसन - 'मेरे नौजवान दास्त! तुम जो समय बर्बाद कर रहे हो - मेरा, उसका मूल्य क्या जुडेगा नहीं।' ग्राहक चुपचाप बढे हुए मूल्य को देकर चलता बना।

यह बहुत पुरानी घटना है - जो समय के मूल्य पर इशारा करती है।

हमारे राष्ट्र के बाजारा मे - लेन-दन मे दर-मुलाई मे - ग्राहक व दुकानदार की झिकझिक म कितना बहुमूल्य - कहना चाहिए अमूल्य समय बर्बाद होता है - इसका कोई हिसाब नहीं।

कहा है - 'महाभारत' का वह तुलाधार वैश्य - जिसकी तराजू की डाडी सदा सीधी थी - भोले बच्चे चाहे लेने जाव या होशियार - सबके लिए समान। व्यवहार शुचिता मदिरा से लेकर बाजार तक एक सी हा - यह भी समत्व की साधना ह।

मेरा गुरु — एक हज्जाम

एक हज्जाम की दुकान थी। एक नाई हजामत बना रहा था। इतने मे एक फकीर गुजरा। उसने नाई से कहा – 'भैया! अल्लाह के नाम पर मेरी हजामत कर दे।' नाई अल्लाह का नाम सुनकर, जिसकी वह हजामत बना रहा था ग्राहक से कहने लगा – 'क्षमा कर, आपकी हजामत अब देर से बनेगी। सवाल अल्लाह का है इसलिए अल्लाह का काम पहले।' ग्राहक राजी हो गया।

नाई ने उस फकीर की हजामत बहुत प्रेम से बनाई और अत मे नमस्कार कर उसे बिदा किया।

कितने ही दिनो बाद उस फकीर को किसी ने कुछ पैसे भेट किए। वह उन पैसो को लेकर नाई के पास आया और कहने लगा – 'ले हजामत का यह मेहनताना।'

नाई – 'कैसे पैसे? तुम्हे शर्म नहीं मैंने अल्लाह के नाम पर हजामत बनाई थी पैसे के नाम पर नहीं।' फकीर यह सुनकर चकित खड़ा रहा। जैसे यह नाई नही, सचाई को उजागर करने वाला कोई गुरु है मुरशिद है।' वह फकीर अदब से झुका और चल पडा।

फकीर अपने चेलो से बराबर कहा करता – 'मैने अल्लाह के लिए अपने जीवन को सौंप दिया है इसमे कोई चाह नहीं। इसको सिखाने वाला मेरा गुरु है – एक हज्जाम।'

आदमी जहा से भी सीखे, उसे कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार करना शुरू कर दे तो दुनिया बेहतर बन जाएगी।

बडी चाह तो मूल्य भी बडा

सोने को परखने के लिए हमारे पास चार अग्नि परीक्षाएं हैं। कभी वह कसोटी पर कसा जाता है कभी आग में तपाया, पिघलाया जाता है, कभी काट कर देखा जाता है और पीटा जाता है। तब कहीं सोना अपनी महत्ता प्रकट कर पाता है।

इसी प्रकार हमारे जीवन का गौरव मिलता है - त्याग से शील से गुण और आचरण से। हम यदि सफल जीवन के सच्चे आकांक्षी हैं तो हमें किसी-न किसी मात्रा में त्याग करना पडेगा। शील शिष्टाचार को निभाना होगा। सद्गुणों को धारण करना पडेगा और साथ ही इन गुणों को आचरण में लाना होगा। बडी चीज चाहते हैं तो मूल्य भी चुकाना होगा। सतमेत मुफ्त या फोकट में कुछ भी नहीं मिलता। 'हींग लगे ना फिटकरी रंग चोखा आवे।' ऐसा होता नहीं।

चाणक्य नीति-वचन इस सत्य के गवाही हैं -

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, निघर्षणच्छेदन-ताप-ताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते, त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा॥

पसीना ही अमृत

हम अमृत की तलाश म हैं। एक आदमी इसी खाज म मारा-मारा भटकता रहा। अत मे एक फकीर के पास पहुचा - कहने लगा - 'बाबा! मैं अमृत की तलाश म हू।' सत खिलखिला कर हँसे कहने लगे।

'नासमझ! अमृत तेरे पास है कहा तलाशता हे! तेरे ललाट पर पसीने की बूदे जब मोती की आब सी झलकती हे तो धरती पर अमृत-कलश छलकता है। ये बूदे धरती को नदनवन बनाती हैं। ये जब ऊबड-खाबड खड्डो और गड्ढो पर पडती हैं तो प्रगति के प्रशस्त पथ बनते ह।

पसीने से पवित्र और कुछ नही। ललाट पर ये सौभाग्य की स्वर्ण-लिपि है। अनगढ पाषाणो पर य बूद शिल्पी की छैनी मे जब उतरती हैं तो देव प्रतिमाए बनती हैं।

ससार मे जो कुछ शुभ है, मगल हे - इसी श्रम-देवता का वरदान है।

जा, पसीना बहा, जो भगवान् राम लक्ष्मण और सीता का तप-वारि रूप स भारत म रामायण के श्लोक लिखता रहा।'

नि सदेह जीवन का यह सत्य जहा, जब भी साकार हुआ, व्यक्ति क लिए लावण्य बना, समाज के लिए सस्कृति बना और विश्व के लिए शाति। श्रम काति है, क्राति हे और हे शाति।

बिना लक्ष्य के राह की झूठी तलाश

प्रश्न पथ का नही, प्रश्न ह - लक्ष्य का। एक आदमी न सत से पूछा - 'रास्ता किधर ह, कान सा हे?' सत न कहा - 'अहा! यह पर्वत कितना मोहक ह?'

पथिक - 'पर म पूछता हू, पथ क सबध म।'

सत - 'तुम्ह यदि यह पहाड मोह लेता हे आराहण के लिए ये चमकते शिखर बुलाते हा ता पथ का प्रश्न नहीं। नहीं तो हजार मार्ग हैं राह ह पगडडिया है - चली हुइ रूढिया हैं - जा भटकाती आर चक्कर म डालती एक दुसर का काटती हैं। इसलिए अपने से प्रश्न करो - लक्ष्य क्या ह?'

मनमुग्ध हम राह पूछते राहा का निंदा या प्रशसा करत जीवन बिता देत ह। लक्ष्य की स्पष्टता, प्रखरता आर उज्ज्वलता नए राहा क निर्माण करती हैं।

यह तो विहगम् मार्ग है - चाहे जहा स जिधर स पक्षी उडता हुआ हजारा मील तय करता सौंधी धरती म पहुच जाता है। दूर हरित-भरित धरती मनुहार भरी, नह भरी प्रम की पाती भेजती है आर परिंदे पर फैलाए पहुच जाते हैं - अपना नया मौलिक मार्ग बनात हुए।

जीवन म लक्ष्य की स्पष्टता ही पथ की प्रशस्तता है।

चितन मनन

सत, सिह और शूरमा

हमारा राष्ट्र चिह्न ह - सिह त्रिमूर्ति। हमार नाटा पर हमार राष्ट्र पत्रा पर अकित ह तीन सिह। इन तीना सिहा की मुख मुद्रा पर भारतीय सस्कृति की अमिट छाप अकित ह। मूर्तिकार ने मध्य म जिस सिह को शिल्पित किया हे उसके मुख पर शार्य का भाव अकित ह। दुष्टा के दमन के लिए पवित्र क्रोध उमडा ह उसक फले हुए अयाल इसकी व्यजना कर रहे हैं। पर दूसरे मुख पर शाति का अखड साम्राज्य हे आर तीसरे सिह की मुद्रा गभीरता लिए हैं।

यानी हमारा राष्ट्र शाति का उपासक ह, हमारा राष्ट्र गभीरता का प्रेमी हे - पर यह शाति एव यह गभीरता सदेव शोर्य से उद्दीप्त रह। क्याकि सत सिह ओर शूरमा का एक ही पथ ह।

हमारी शूरता कभी क्रूरता न बने हमारी शाति कभी कायरता न बने। यही हमारे राष्ट्र की सच्ची अस्मिता हे जिसके व्याख्याता ह - त्रिमूर्ति वाले ये सिह।

बस — तीन काम करता हूँ

संत कबीर ताने-बाने में लगे जीवन के धागों को सुलझाते रहे। हाथ में काम मुख में नाम। एक जिज्ञासु पहुंचा-पूछने लगा 'आप रात-दिन कैसे बिताते हैं?'

कबीर - 'मेरे लिए न रात न दिन, सदा एक सा समय। बस तीन काम करता हूं - १ तोड़ता हूं, जोड़ता हूं। २ खाली करता हूं, भरता हूं। ३ भूलता हूं, याद करता हूं।

जिज्ञासु कुछ समझ न पाया। दयालु संत ने कहा - 'दुनिया से संबंध जुड़ते हैं उन धागों को उधर से तोड़ता रहता हूं और इधर भगवान् से जोड़ता रहता हूं। मन को खाली करता रहता हूं - मोह से मैं से मेरा से और भरता रहता हूं - उस 'तू' से जिससे तू ही तू रहे कहीं 'हूं' रह न जाए।

कितने नामरूप जगत के आते हैं - उनको भूलना एक ही धंधा और अपने स्वरूप को सतत याद रखना।

यही मेरा खेल है यही धंधा और यही सांसों सांस की सहज समाधि जिज्ञासु सुनता गया और अंतर के पट खुलते गए।

धर्म तो सन्तुलन मे

बम्बई म आर्य समाज मदिर क लिए एक निधि खाली गई। लाग यथा-शक्ति दान दे रह थे। एक मारवाडी मज्जन महर्षि दयानद के पास आए आर विनमता स बाले - 'महाराज मेर पास दस हजार रुपए ह। यह सारा द्रव्य में आर्य समाज के कोश मे अपित कर रहा हू। यह तुच्छ भट स्वीकार कीजिए।'

महर्षि न उनकी भावना की प्रशसा करते हुए कहा - 'मैं अतीव पसन्न हू कि आपके हृदय म इतना धर्म-पम ह। परतु में आपकी सपूर्ण पृजी लकर आपके परिवार का परमुखापक्षी परान्नपरायण भिक्षुक नही बना सकता।'

आगे समझाया 'जिस धर्म क एक अग क पालन में दूसरा धमाग बिगडता है, वह धम ठीक नहीं। उस मदिर को क्या शाभा होगी जिसके बनने म आपका व्यापार बद हा जाए, आपकी गृहस्थ-यात्रा न चल सके? हा आपस एक महस्र रुपया अवश्य लिया जा सकता हे।'

देने वाल की एमी भावना आर लने वाले का एसा व्यवहार व विवक 'सतुलित ग्रहण-आज कहा तलाश कर।'

हजारो मिल्टन बनते

यह देवदारु का वृक्ष है सा वर्ष का। फिर भी बौना। इसकी जड कटती गई गहराई नहीं जान पाई। जा गहरा हे वही ऊचा हे। गहराई गई यानी ऊचाई गई।

ये वामनीकृत वृक्ष हमारी कला के प्रतीक है। हमारे निर्दय कौशल क।

सवाल पडा का नहीं मनुष्य का है। यदि हम अपने बच्चा को कवल लाड-प्यार देते ह अपन विचार ठूस-ठूस कर भरते ह बधे हुए जड साचो म ढालते हैं तो उन्ह हम गमला क पोधे बना देते हैं। पर परिपूर्ण व्यक्तित्व के विकास क लिए इन्ह थाडी दूरी पर रखना जरूरी है। जिससे ये आधी-अधडा तूफान व बवडरा सर्दी-गर्मी के बदलते पटला के बीच अपने को कायम रखने के लिए शक्ति का सचय कर सकें। नीचे धरती म दूर-दूर तक जड पसर तभी खुले आकाश म इनकी शाखाए फैल सकगी। शाखा का अर्थ हे - जो ख (आकाश) में, श (शयन) कर सके।

शरीर के स्तर पर जीना अपने का बोना बनाना है। जा आत्मा के स्तर पर अपने को ले जाते है - शरीर प्राण, वाक्, मन एव बुद्धि के स्तरो को चीरकर आत्मा तक अपने स्वरूप तक। तभी वामन-विराट् बनता हे।

कविवर ग्रे का अपने शाकगीत म आहे भरते देखा गया - कब्रिस्तान म - 'हाय! यहा हजारा मिल्टन बनते - पर, बिना बने सोये पडे हैं।'

गुनाहो की चर्चा कब तक।

जो गुनाहो मे लगे ह, उनकी क्यू चर्चा करे।
जो गुनाहो से वचे हे, उनका हम सिजदा कर॥

झोंपडी से लेकर खलियान तक, गाव से शहर तक वाजार से परिपदा तक कवल चर्चा-गुनाहो की। आर भी हजारा बात हैं। लगता ह हमारे भीतर की 'मिस मेयो' केवल गदगी को चारो आर फैला रही हे। गदगी से भरे हमारे छापे हमारी जबान आर हमारे सचार माध्यम। हम डराते हें। पर हम यह भी जानते ह, हमारे पास आसपास कितने ही लोग हैं - भले सच्चे, खरे जा गुनाहा से दूर किसी आदर्श की ओर मुह उठाए, धीमे कदम रखते चल रहे हैं - उनके प्रति एक प्रणाम करने की जरा आदत बनाकर देख। जेसे ही हमने इस उजले पक्ष को उजागर किया - राशनी जगमग हा जाएगी।

हम अमावस के अधेरे की चर्चा करते जीवन न बिताव, दीपावली के दीपका की माला सजो कर अधेर को चुनोती द तब लगगा - यह धरती सितारा से जगमग आसमान को भी फीका कर रही हे।

एक शर्त है -

'जो गुनाहो स वचे है, उनको हम सिजदा करे।'

न्याय भी नाटक-सा

कभी-कभी न्याय एक नाटक बन जाता है। नाटक भी वसा एक प्रहसन, यानी विडबना एक मखाल। करे काई, भरे कोई।

प्रसिद्ध कहावत हे 'तबेले की बला बदर के सिर।' अस्तबल म कभी-कभी घाडा क बीमारी आ जाती ह ता पुराने रिवाज के मुताबिक बदरा का पकड कर उनके अगा पर गर्म लाह से दाग बनाए जाते थ। इससे अस्तबल ठीक-ठाक हा जाता ह। यह अधविश्वास का नमूना था। पर न्याय भी कभी-कभी विचित्र होता हे। अपराध काई करे आर दड दूसरे को भागना पड।

अजीब बात ह, 'ऊट खुडावे गाधो डामीजे।' लगडाता ता ह ऊट ओर उसके बदले म डाम (लाहे की शलाका गर्म कर उससे किसी क अग का जलाकर दाग लगाना) लगाया जाता ह गध के।

एसा सुना था-कवल अधेर नगरी में। पर वह ता प्रहसन था हँसान के लिए। पर जब वास्तव म एसा हाता ह ता इतिहास के आसू आ जाते हैं। दड-जब उद्दड बनता हे तो क्राति का आवाहन हाता है। दड सीधा रह न इधर झुक न उधर-तब दड न्याय दड बनता है जिसम भाव छिपा ह - 'परित्राणाय साधूनाम्' शुभ की रक्षा।

पवित्रता का निवास - चित्त मे

इटली के एक विख्यात चित्रकार स किसी सरदार ने पूछा - 'आपको रमणियो के एसे भावपूर्ण सौम्य सलोने मुख मडल दखने को कहा मिलते हें, जिनको आप अपने चित्रा म प्रदर्शित करत ह? आपके इन आदर्शो के स्रोत कहा हैं?'

चतुर चित्रकार ने सामने खडी एक भद्दी-सी स्त्री का विनम्रता से बुलाया और कहा - 'आप आकाश की आर मुह करके थोडी दर बठने की कृपा करे।' उसके वैठ जान पर चित्रकार ने अत्यत सुदरी युवती को चित्रित कर डाला - जा प्रार्थना म रत प्रशात भाव से भरी थी।' सरदार वैठी हुई औरत को तथा चित्राकित सजीव प्रार्थना का देखता रहा, कभी उस आर, कभी इस आर। दोना म कहा साम्य सूत्र ह - कुतूहल स तलाशता रहा।

चित्रकार - 'पवित्र व सुदर भाव चित्त म हात हैं फिर परवाह नहीं - नमूना सम्मुख कैसा है।'

'जाकी रही भावना जैसी' यही चिरतन सत्य है।

यह दुनिया — अपना ही दर्पण

एक राहगीर नई बस्ती मे पहुचा। उसे एक बूढा मिला। राहगीर ने पूछा - 'बाबा! सच बतावे इस बस्ती के लोग कैसे है?' बूढे ने उत्तर न देकर प्रश्न किया - 'महानुभाव! आप जहा से आए है, वहा के लोग कैसे है?' राहगीर - 'बाबा! मत पूछिए, वहा का हाल! लोग धूर्त, भ्रष्ट और शैतान हैं। उन्हीं से पिड छुडाकर आया हू।' वृद्ध - 'यहा तो और भी बुरे मिलेगे। शैतान के भी कान काटने वाले।'

इतने मे एक दूसरा राही आ पहुचा उसने भी वही प्रश्न किया। बाबा ने पूछा - 'आप जहा से आ रहे है, वहा के लोग कैसे हैं?' राहगीर की आखे छलछला आई मीठी यादो मे वह खो गया। कहने लगा - 'वे लोग बहुत प्यारे, स्नेही दयालु और मेरी सारी खुशियो के साधन थे।' वृद्ध 'यहा के लोग समझो देवता है सबका खुले दिल से स्वागत करने वाले।'

यह उत्तर सुनकर पहला राहगीर झल्लाया और बडबडा कर कहने लगा - 'बूढे! ईश्वर से भी नहीं डरता। मुझे डराता है और इसको लुभाता है। दोगली बाते करता है।' बूढा - 'यह दुनिया अपना ही दर्पण है। तुम जैसे हो वही दुनिया है। आप भला तो जग भला यह कहावत नहीं, एक हकीकत है।'

हमारे भीतर यदि सत्य नहीं, शिव नहीं सुदर नहीं, तो जगत मे खोजा कहीं कुछ नहीं मिलने का।

बुढिया ने कहा - 'बेटी! ईद का चाद बहुत फीका है।' बेटी - 'नहीं अम्मा! चाद चादी सा चमकता है धुधलापन तो बुझती सी नजरो मे है।'

खाली जगह को भरो

परीक्षा म कभी-कभी पूछा जाता ह - खाली जगह का भरा। रिक्त स्थान की पूर्ति करा। इस जीवन पर लागू करना भी सीख। रात-दिन कदम-कदम पर खाली जगह, सूनी जगह मिलती है। उसे भरना सीख ल ता जीवन का टूटा हुआ कथानक एक अर्थ देन लगेगा।

भाजन क बाद तुरत काम पर न लगा। पाच मिनट ही सही, जरा शाति से उठा। आफिस स आकर पपर हाथ म न ला जरा मुस्करा कर परिवार स मिला, बठा गपशप करा। सुबह अकेले न रहो। कभी बादला क साथ घूमो सूरज का उगता देखा, परिदा के सग उडो-चुपचाप बहो।

निराशा के क्षणा मे - कोई गीत गुनगुनाओ, भजन की टेक को मन म टिकाआ। पास पडास की सुध ला कहीं पीडा हा बीमारी हा, बिना बुलावे सहभागी बना। उत्सव का बुलावा आवे प्रसन्न मुख शामिल होना सीखो।

कही भी अच्छा हो, प्रशसा करो। भीड हो, हटकर जगह दा। आप श्रीमन्, प्रभु' क मीठे सबाधना की सुरभि से वातावरण को महकाना न भूला!

आप के बोलने म, उठने-बठने म सभल कर चलने मे, किसी की बात न काटकर उसकी बढिया बात पर 'वाह वाह' करने मे अपनी शालीनता का परिचय दा।

ये हैं - जीवन के रिक्त, सूने, उदासी भरे बजर खाली जगहा को भरने, चमकाने आर अर्थवत्ता देने के उपाय। ये प्रकाश के दीप आग पीछे उजाला भरते हैं।

मनुष्य से श्रेष्ठतर कुछ भी नहीं

भगवान् वेद व्यास ने एक गुह्यतम - सबसे छिपे - रहस्य का प्रकट किया - 'मनुष्य से श्रेष्ठतर कुछ भी नहीं।' कविवर चंडीदास का मत 'उससे ऊपर कुछ भी नहीं।' असल में 'नर की पिंडी का क्या मोल!' नर के भीतर नारायण का निवास है।

मनुष्य की इस महिमा को साम्यवाद के सर्वश्रेष्ठ विश्वविख्यात लेखक मैक्सिम गार्की ने जिन शब्दों में प्रकट किया है, वे बेजोड़ हैं —

'मैं यह तो नहीं जानता कि मैं अपनी किताबों से बेहतर हूँ या नहीं मगर इतना जरूर जानता हूँ कि लेखक को, जो कुछ वह लिखता है, उससे ऊपर बेहतर होना चाहिए। क्योंकि - आखिर किताब है क्या? एक महान किताब भी शब्दों की महज काली और मृत छाया है और सत्य के प्रति एक इंगित मात्र है, जबकि आदमी जीवित ईश्वर का मंदिर है। और मैं समझता हूँ कि पूर्णता सत्य और न्याय प्राप्ति की अखंड साधना का नाम ईश्वर है। इसलिए बुरा आदमी भी अच्छी किताब से बेहतर है।

मैं इस बात का पूरी तरह कायल हो चुका हूँ कि समूची धरती पर आदमी से बेहतर कोई दूसरी चीज नहीं है और मैं कहना चाहता हूँ कि जीवित सिर्फ आदमी रहता है बाकी सब चीजें महज ख्याल हैं। मैं हमेशा से आदमी का पुजारी रहा हूँ और रहूँगा सिर्फ इतना नहीं जानता कि इस आस्था की अधिक से अधिक समर्थ अभिव्यक्ति कैसे करूँ?'

चितन मनन

कण थोडा — काकर घणा

'कण थोडा काकर घणा

यह जीवन का कटु अनुभव। जहा जावे, जिधर देखे जिसे देखें - चारा ओर एक सा खल। सार बाते कम केवल धोखा, कोरा आडबर और झूठ ही झूठ का झगडा। तो फिर क्या कर? यह निराशा का चित्र है। जीवन से भागने का पलायन करने का कायरतापूर्ण रास्ता है। माना - काकर घणा हे, पर यहा कण भी तो हैं, कम सही।

आइए, धेर्य रखें, शाति को अपनाव, पुरुषार्थ को पराजित न हाने द, हिम्मत न हार हौसले सभाले रख - कण थोडे हैं - कोई बात नहीं। उन्हे ककडा से अलग करे सावधानी से सभाले, कणा को स्नेह भरे हाथा का स्पर्श द और धरती मे इन्हे गाड, उन्हे बोवे, उन्हे जल से सींचे ओर अकुरित होने का अवसर दे।

दखगे, धरती म ये कण अकुरित होकर चारो ओर हरी-हरी मखमली चादर बन बिछ जावगे। इन कणा मे मणा धान बनने की सभावनाए ह।

जहा भी जाव अच्छाई को सभालें अपनावे। काकर अधेरा है, कण प्रकाश है।

कोई बात नहीं - 'कण थोडा काकर घणा।'

कण जीवत हें प्राणवत हें - भावी विकास की अनन्त सभावना लिए। पर काकर जड हें, पिसने, मिटने व धूलिकण बनने की त्रासदी लिए ह। कण-ऊर्जा लिए विकासान्मुख हैं। भावी प्रकाश के अग्रदूत।

चोरी के नये आयाम

चोरी हाती ह चित्त की वित्त की। चित्त की चारी ता सचमुच एक बार हुई - आज भी जिम चितचोर कहकर पुकारत हैं और जिस चार शिरामणि कहत हैं - मक्खन क चुरैया कान्हा का। आज तक उस पर हिंदू, मुसलमान ईसाई अनक रूपा म कुर्बान हा गए। लगता ह भटकते चित्त का जहा महारा मिला वह कान्हा बन गया।

वित्त की चारी - आम बात है। जब तक सग्रह है अभाव ह यह चारी जारी है।

पर सब से खतरनाक चारी ह - यश की कीर्ति की। काम कोई करता है - यश को चुरान वाले चारा आर छिप प्रकट तैयार। मान-न-मान म तेरा मेहमान तक ता ठाक लेकिन अगुली कटाकर शहीदा म नाम लिखान की हाड लगी रहती ह। कभी-कभी काम करन वाला नींव म पडा रहता है और ऊपर यश के कगूरे चमक-दमक फैलाते हैं।

इस भीड मे जिस शख्स का कद सबसे बडा ह।
वह शख्स किसी आर के कधे पर खडा है।

पाच सवारा म नाम लिखाने वाला की कहीं कमी नहीं। थोड से लाग महान् हात ह अधिक लोगा पर महत्ता ऊपर से थापी जाती है, ठोक-पीटकर वैद्यराज बनाने के नए नए ढग ईजाद हाते रहते हैं। पर समय की कसाटी पर खर कम उतरते हैं - असल असल है और नकल नकल।

आज बस आज

विश्व के यशस्वी चिंतक रस्किन लिखने में तन्मय थे। हवा के झोंके से एक लिखा हुआ पन्ना उड गया। वे पत्ते को लाने के लिए उठे। पन्ना उडता हुआ खुले मैदान में गुलाब के कांटे में अटक गया। रस्किन ने पत्र को निकाला। कहने लगे - 'कवि लोग गुलाब की पंखुरियों के गीत गाते हैं, पर, मेरे तो यह कांटा ही काम आया। प्यारे कांटे! मैं आज तुम्हारी सुरभि से मुग्ध हूं।'

पन्ने न उडे, उसके लिए कोई 'पेपरवेट' तलाशा जाए। एक छोटा-सा पत्थर का टुकडा दिखाई दिया। वे इस टुकडे को लेकर आए। लिखे हुए पन्नों पर रख लिखने लगे, पर विचार शृंखला में वह पत्थर का टुकडा अटका रहा। विचारा - यह साधारण पत्थर मेरे सामने सदा रहेगा। इस पर क्या चित्रित करूं - नो, कोई अच्छा वाक्य लिखूं - जो सदा प्रेरणा दे। पर, जगह कहां! लाखों शब्द आए और गए फिर सूझा एक छोटा-सा शब्द, दिव्य शब्द, जीवन को सदा शक्ति ऊर्जा व प्रेरणा देने वाला शब्द वह था -

'आज।' पत्थर पर शब्द लिख दिया गया। 'आज' ही सत्य है। इसका स्वागत हो। कल गया, वह गया। आने वाला कल - अभी जन्मा नहीं। 'आज' जीवन का सार है। यही विकास है। यही सिद्धि है, यही कर्म का गौरव है। विगत मृत आगत - स्वप्न। जीवंत केवल 'आज' - इसी के क्षण-क्षण का दोहन। यही बुद्ध है यही ईसा है और यही है गांधी।

न ज्यादा देखना, न कम देखना

पिता के स्वर्गवास के बाद जब पुत्र ने पिता की मजूषा को खोला तो देखा, वह खाली है - एक कागज का टुकडा रखा है - जिसमे इतना ही लिखा है -

'न ज्यादा देखना न कम देखना
यही है-पूजी मेरी धरोहर।'

उक्त दो बातो का अर्थ उसकी समझ मे नहीं आया। वह इधर उधर इसका अर्थ जानने के लिए भटका। अत मे एक अनुभवी सत मिला उसने दूसरे दिन आने को कहा।

वह आदमी ठीक समय पर पहुचा। सत के पास भक्तमडली भी जमा थी।

सत - 'न ज्यादा देखना न कम देखना।'

इसके अर्थ की तलाश मे एक युवक है। ये दो वाक्य नही हैं जीवन को सुखी और प्रगतिशील बनाने के दो अमोल 'गुर' हैं दो मत्र है। 'न ज्यादा देखना' - यानी बहुत पुरानी बातो के कारण आज को मत बिगाडना। हजार पाच सौ वर्ष पहले जो जातिया समाज या वर्ग लडे थे - तो क्या आज उस झगडे को लेकर लडते रहने की मूर्खता करे नहीं। 'न कम देखना' का अर्थ है कि इसी क्षण - अभी किसी से कोई झगडा हो गया तो उसको इतना महत्त्व मत दो कि कल तक के सारे गुण, कल तक की, अभी तक की, सारी विशेषताओ को भुला दो।

पुराने पचडो को भूलो और नए की केवल एक आध बात को इतना महत्त्व मत दो कि उसके किए-कराए को मिट्टी मे मिला दो।

सम्यक् पुरुष बनो - यानी सही आदमी बनो - जो सही ढग से सही वक्त पर सही निर्णय ले। न अधिक न कम - मध्य मे सम।

धरती खूबसूरत किताब — ये भूले।

सभी का, पशु-पक्षिया तक का अपनी जन्मभूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' स्वर्ग से बढ कर लगती ह। पर, कई एसे भी हैं, चाह सख्या म कम हा जिन्ह सारी सृष्टि मनारम लगती ह। उन्ह यह धरती सबको धारण करन वाली पोपण करने वाली मा लगती ह।

शायर की निगाह खुली हाती ह –

यह धरती खूबसूरत किताब ह
चाद सूरज की जिल्दवाली
पर खुदाया!
यह भूख यह गरीबी वहम आर गुलामी
क्या यह तरी इबारत है?
या तेर प्रकाशक से रह गई प्रूफ रीडिंग की गलतिया?

—अमृता प्रीतम

ससार म अभाव है जिम्मेवार कौन? इसी के उत्तर की तलाश म है राजनीति अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र। राजनीति फम जाती हे - पार्टी के दलदल मे अर्थशास्त्र शोपण के नए स्रोत जुटाने म भ्रात है। धर्म खो जाता है - कर्मकाडा मजहबी मतवालेपन म।

अब रह गए, फकीर सत - जरा इनकी सुन तो राह मिले। सता की चतावनी ह –

'जो दिल खाज आपना ता मुझ सा बुरा न काय।'

इस धरती को बदसूरत बनाने म कहीं-न-कहीं मेरी भी गलती है आआ विचार। तो फिर सभी उलझने सुलझी पडी हे।

मै बादशाह राम हूँ — सब का

राम बादशाह स्वामी रामतीर्थ जब अमेरिका स वापस आकर मथुरा पहुच तो उनका भक्ता ने परामर्श दिया कि आप किसी सस्था की स्थापना करे। तो उन्हाने कहा – 'भारतवर्ष म जितनी सभा समितिया हैं व सब राम की हें, राम उनमे कार्य करेगा। ईसाई आर्य, सिख, हिंदू, पारसी मुलसमान आर वे सब लाग जिनक अग हड्डिया रक्त और मस्तिष्क - मरे इष्ट देव भारत-देवता के अन्न-जल से बने हैं वे मरे भाई हैं मर अपने हे।

'जाआ उनसे कह दो कि राम उनका है'

'मैं ससार पर प्रेम की वर्षा करूगा आर ससार का आनद की धारा मे नहलाऊगा।

'मैं प्रम की वर्षा करता हू, इसलिए समस्त सभा समितिया मेरी हैं चाहे वह छोटी हों या बडी।

'मैं बादशाह राम हू। मेरा सिहासन तुम्हारे हदय म है। जब मने वेदा का उपदेश दिया, जब कुरुक्षेत्र मे गीता सुनाई, जब मक्का आर यरुशलम म अपने सदेश सुनाए, तब लागा ने मुझे गलत समझा। अब म अपनी आवाज फिर ऊची करता हू।'

ऐसी उदार वाणी जहा उच्चरित हुई हो, वहा कहीं हम ऊचे पद पर उठ कर भी अपने परिवार, प्रात, जाति, मित्र आर अपनी क्षुद्र एषणाआ के शिकार तो नहीं हा रहे ह। पर

कहने की बात हे, मगर कहेगा कौन?
नाखुदा ने कितने सफीने डुबो दिए॥

नाखुदा-मल्लाह नेता।

विरोधो मे झाकता सौंदर्य

जीवन म सौंदर्य तभी झलकता ह जब विरोधो म एकता हो। साधारणत दखा जाता ह कि लाग धार्मिक हाते ह - जब बीमार हा, बूढे हा दुखी हा। पर, महाकवि कालिदास ने देखा - रघुवश को यानी एक श्रेष्ठ परपरा को, भारतीय सस्कृति को - जहा विरोधो म मेल था। इसलिए वे गद्‌गद् हा कहने लग - म इस परपरा क पुजारियो का गौरव-गान करूगा क्योकि -

ये धार्मिक थे पर बिना बीमार हुए।

ये सग्रह करते थे बिना लोभ के, देने कि लिए

ये मितभाषी थ सत्य की रक्षा के लिए - न कि अज्ञान के कारण

ये ज्ञानी थे पर मान रहते थे।

ये देते थे प्रशसा की चाह के बिना।

इसके विपरीत हम धार्मिक हात हैं बीमारी के कारण। हम सग्रह करते हैं लाभ के वश म होकर। हम मितभाषी हैं - अज्ञान के कारण। हम ज्ञानी हैं तो दिन भर बक-बक विवाद। हम देत ह - पर उसमें अधिक यश चाहते हैं। यशोलिप्मा के शिकार हम। ये सस्कृति के नहीं विकृति क चिह्न हें। काश यह एक पक्ति भी चरित्र मे उभरे -

'ज्ञान मान क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघा विपर्यय ।' - रघुवश

- ज्ञान होने पर मौन, शक्ति क रहते क्षमा और त्याग करने पर भी प्रशसा न चाहना।

एक सदी पहले का खत

एक शताब्दी पहले स्वामी विवेकानद का लिखा पत्र आज भी हमारी *अकर्मण्यता और दिशाहारा का क्या प्रमाण नहीं है।*

'मैंने जापान म सुना कि वहा की लडकिया का यह विश्वास हे कि यदि उनकी गुडियो को हदय स प्यार किया जाए ता वे जीवित हो उठगी। *जापानी बालिका अपनी गुडिया को कभी नही छोडती।*

हे महाभाग। मेरा भी विश्वास हे कि यदि हतश्री अभागे, निर्बुद्धि,पददलित चिर बुभुक्षित झगडालू आर ईर्ष्यालु भारतवासिया को भी काइ हदय स प्यार करने लग तो भारत पुन जाग्रत हो जाएगा। भारत तभी जागेगा जब विशाल हदय वाले सैकडा स्त्री पुरुप भोगविलास और सुख की सभी इच्छाआ को विसर्जित कर मन वचन और शरीर से उन करोडा भारतीया के कल्याण के लिए सचेष्ट होगे।'

हम चाहे अब हतश्री व अभागे न हा कराडो हम पददरित बुभुक्षित हैं - साथ ही हम झगडालूपन व ईर्ष्या से भी उभर नहीं पाए हैं। यह कठिन कार्य न तो धन बाटने से हा सकता हे न कोरी दया से और राजनीति से - यह कार्य है समभाव से कार्य करने का हार्दिक प्यार का, त्याग का और प्रेमव्रत का।

काश, अब यह पत्र इनिहास बनकर ही रह जावे।

ज्ञान चारो ओर बिखरा है

संत कहने लगे 'जानना हो, लेना हो, कहीं से ले सकते हो। ज्ञान की गंगा सर्वत्र बह रही है।' एक श्रोता ने कहा - 'सामने - यह लुहार है, क्या यहां भी ज्ञान पड़ा है, उपदेश छिपा है।' संत - 'हां यह लुहार और इसके औजार भी हमें सीख देते हैं। चलो, वहीं उसी से सीख बटोरें।'

संत उठ खड़े हुए। पीछे-पीछे भक्तमंडली। संत को देखकर लुहार चौंका और अपना काम रोककर उठ खड़ा हुआ।

संत - 'भैया! तुम अपना काम करते रहो। हम तुम्हारे काम को देखकर ज्ञान बटोरने आए हैं। तुम यह बताओ - सामने जो निहाई है जिस पर तुम अपने हथौड़े मारते हो, इनकी चोट से कितनी निहाइयां टूटी हैं?' लुहार - 'महाराज! यह निहाई तो वर्षों से एक ही है - हथौड़े न जाने कितने ही टूटे हैं?'

संत ने श्रोताओं से कहा - 'देखो निहाई बची और चोट करने वाले हथौड़े टूटे इसका मतलब है - जो दूसरों पर प्रहार करते हैं - उनका नाश होगा, पर जो स्थिर हैं, सहनशील और दृढ़ हैं - वही बचेंगे। जाओ आज का प्रवचन समाप्त।'

सच है, यह प्रकृति भी एक पोथी है - जो न बूढ़ी होती है जीर्ण होती है न मरती है। पर इससे पाठ पढ़ने के लिए आंखें चाहिए, मोर के चंदोवे की पांखें नहीं। 'आंखियां चहे न मोर पंखियां चहे।'

गाधी — तारीख किसने बदली हे ?

गाधीजी आगाखा महल म नजरवद थे। वहा केलडर की तारीख बदलने का काम मीरा बहन करती थी। एक दिन उन्ह बुखार आ गया। तारीख बदली नहीं गई। यह देखकर मनु ने साचा, मे ही बदल दू।

मीरा बहन पिछले दिन की पर्ची फाडकर एक पड म रखती थी और वह पर्ची बापू के मौन दिवस पर काम आती थी। गाधीजी उस पर लिखकर बात करते। मनु का इसका पता नहीं था। अत पर्ची फाडी और फेक दी।

गाधीजी ने देखा पेड म पर्ची नहीं। उन्होने कहा - 'तारीख किसने बदली है?' मनु - 'मैंने पर्ची फक दी।' गाधीजी ने कहा - 'जा तलाश कर ला।' बस फिर क्या था। आगाखा महल म जितने लाग थे सभी पर्ची की तलाश म। मदान मे चारा आर तलाश। तब कही जाकर शाम को महादेव भाई की समाधि के पास वह मुडी हुई मिली। उसे पाकर गाधीजी का चेहरा खिल गया। उन्हाने उस पर्ची को फेलाकर एक किताब मे रख दिया।

और आज? पर्ची तो क्या - अरबा की फाइले कहीं कीचड मे पडी हैं। हाथी-के-हाथी गायब। पर्ची की जगह 'राष्ट्र का परिचय' भी गुमनाम न हो जाए। 'जागु-जागु जीव जड' यही ह - पर्ची की चेतावनी।

गिरगिराहट चिरमिराहट

एक ठाकुर नशे मे चूर घोडी पर चढा जा रहा था। मन तरगो पर था। एक याचक ने कहा – 'अन्नदाता! में सर्दी मे काप रहा हू, यह कबल इनायत हो।' ठाकुर ने मौज म आकर कबल दे दी।

अब याचक के मन म आया कि म यदि यह घोडी माग लू तो शायद मुझे मिल जावे। वह दोडा-दोडा पुकारता रहा – 'गरीब परवर! मेरी फरियाद सुनिए।' घुड सवार ने पीछे मुडकर देखा, कोई दौडता पुकारता आ रहा हे।

घोडा रुका। याचक – 'आप दया के दरियाव हें। यह घोडी मुझे दे दे तो मेरा कल्याण हा जाव।' याचक की ऐसी धृष्टता देखकर-ठाकुर ने दा-चार सडासड चाबुक जड दिए।

चाबुक की मार खाकर कहने लगा – 'ठाकुर साहब! आप ने मेरा बडा भला किया। इस लगी हुई चोट की 'चिरमिराहट' तो दो एक रोज म मिट जाएगी, पर, यदि मैं मागता नहीं तो मर मन म गिरगिराहट (तर्क-वितर्क) बराबर बनी रहती। मन म यह बात बरावर खटकती रहती कि मैंने घोडी न माग कर बडी भूल की, क्या पता घाडी मिल ही जाती।

हमारे जीवन म भी क्या इसी प्रकार की ऊहापोहात्मक 'गिरगिराहट' नही रह जाती कि हम मुड कर पछताते हें कि यदि एसा करत ता शायद ऐसा हा जाता। जबकि सत्य यह हे – जा हा गया ह, वह अमिट ह। हाथ म आज ह – जिसम फल रूप मे आते भविष्य छिपे हैं।

नादान चेले

गुरु बाहर जा रहे थे। चेला से कहा, 'काकेभ्या दधि रक्षताम्।' काआ से दही की रक्षा करना। चले पके आज्ञाकारी। कोआ का उडाने म लग गए। एक भी कोए को पास फटकने नहीं दिया। गुरु लोट कर आए ता देखा दही साफ। गुरु की भोह तन गई।

गुरु - 'तुमन दही का ग्चाया नहीं देखा, दही का ता काई साफ क़र गया हे।' चले गुरु की नाराजगी का समझ नहीं पाए। कहन लग - 'आपने कहा था - कौआ से दही की रक्षा करना ता हमने एक भी कौए का आन नहीं दिया। बिल्ली आई वह दही का खा गई पर आपन यह नहीं कहा कि दही को बिल्ली से भी बचाना है।'

गुरु न दु खी मन स कहा - 'नासमझो! इस वाक्य म 'दही का ग्चाना' मुख्य था - न कि कोआ स। कोआ तो उपलक्ष्य था मुख्य लक्ष्य था - 'दधि-रक्षा।' चले भोले निरपराध।

हम कहते है - 'राष्ट्र के धन का बचाना है - चारा से, डाकुआ स, तस्करा से।' हम यह नहीं कहत - 'राष्ट्र के खजाने का बचाना है राष्ट्रनायका स सभ्या स अधिकारिया स इनक परिवारा से इनक मुहलगे चाटुकारा स।'

इसीलिए भगवान् चाणक्य न कहा - 'राजा का चाहिए - प्रजा क काप की रक्षा कर - अपनी एषणा से और अपन चाटुकार मुहलग लागा स।'

चल नादान अत क्षम्य। पर य।

मै बेचती हूँ शराब — यानी सर्वनाश

महाकवि कालिदास या ही नगर भमण पर निकले, जन-सपर्क साधने। देखा-हाट के चौराहे पर एक महिला घट का रखे अपनी दुकान जमाए है।

महिला ने कुछ-कुछ पहचाना-कालिदास को। कवि ठहर गए। पूछने लगे - 'क्या बेचती हो?'

महिला - 'तुम तो रवि से आगे बढने वाले कवि हो न। क्या छिपाऊ। बेचती हू - सात पदार्थ 'बुद्धिनाश, सर्वनाश, पागलपन झगडा बेहोशी, सुखा की मौत और जिदा नरक।'

महाकवि की कल्पना भी चकरा गई।

'क्या तुम उन्मत्ता हो? इसको कौन अभागा खरीदता होगा।'

महाकवे। मैंने कवि समझकर निवेदन किया। ध्वनि को समझा - 'म बेचती हू - शराब। केवल शराब-जो इन रूपा से बाहर प्रकट नगा नाचती है।'

'धन्य हो देवी। काश जनसपर्क की यह शैली मुझे मिल पाती तो मेरा काव्यत्व और भी चमक उठता।'

कवि ने देखा - लोग बावले से चले आ रहे हैं इनको खरीदने और वह महिला चिल्लाकर कह रही ह - ग्राहको से -

'क्या लोग - बुद्धिनाश सर्वनाश, जिदा नरक।'

लोग हस रहे है आर खरीद रहे हैं।

पेरो की आग को भी देखे

साल का सब से शुभ मगलमय और अलभ्य दिन, आज का दिन हे। यह जागने का दिन हे, नए सकल्प का दिन है और नव उत्थान का।

पुरानी गलतियो के लिए क्षमा याचना कर स्वीकार कर प्रायश्चित करे - तो मदा भविष्य उजला है।

इतालवी महाकवि दाते का - उनकी विश्वविख्यात कृति 'डिवाइन कामेडिया' के किसी अश से नाराज होकर उनकी जन्मभूमि के लोगा ने दाते को अदालत के फेसले क मुताबिक देश निकाले का दड दिया। सकडा वर्ष के लबे अतराल के बाद अभी-अभी उनके गाव वाला ने मुकद्दमा पुन चलाया और दाते के दड का निरस्त कर उन्हे अपने यशस्वी नागरिक के रूप मे आदर दिया। इस फेसले क उल्लास मे इटली ने एक दिन की छुट्टी कर अपने आनद को प्रकट किया। इन्हीं दिना जापान ने विश्व युद्ध क दिना म अपने द्वारा किये गये अत्याचार के लिए क्षमा याचना कर अपने कलक को मिटाया। एक आदर्श कायम किया।

हम एक दूसरे का दड दिलाने म लग हें। अपराधी आगे आकर, क्षमा याचना कर, नए रूप म राष्ट्र के रथ को आगे बढान का व्रत ल। समय ह, हम केवल पहाड पर जलती आग का ही न देखे अपने पेरा की आग का भी देख।

डूगर जलती लाय, जोवे सारो ही जगत।
पण जलती निज पाय, रती न सूझे राजिया।

बटोर तथा बाट

शत हस्त समाहर

सहस्र हस्त सकिर

– श्रुति भगवती की आज्ञा ह – तू सो हाथा स बटोर आर हजार हाथा स बाट।

यह कथन कैसा रागता हे। समझ के वाहर। पर एमा नही – जितना ल उतना ही बाटे इसम जीवन की सार्थकता कहा।

इस प्रश्न का उत्तर जानने का मतलव हे – जीवन की ऊर्जा से परिचित हाना।

इसका उत्तर धरती से पूछो। धरती का एक वीज सोंपा, वह उसे अनत बनाकर लाटाती है। पेड की जडा को हमने पानी से सींचा-वह फूलो से, फला से हमारी सूनी झोली को भर देता है। गाय को खिलाते हैं – घास, वह हम अमृत तुल्य दूध देकर पुष्ट करती है। इस प्रश्न का उत्तर दगे – कलाकार भक्त, सत। समाज ने उन्हे क्या दिया, कभी तिरस्कार कभी दरिद्रता कभी विष पर, उन्हाने उसके बदले मे समाज को अमर कृतिया दीं मीठ बोल दिए, साथक वाणी दी आशा का प्रकाश दिया ओर भटकते हुए हमारे हाथा म आस्था का मणिदीप दिया। यही हे – सा हाथा से लना आर हजार हाथा से बाटना।

हम चाहे कुछ न कर सक – पर यदि इस भार क प्रति आभार प्रकट करते रहें, तो भी इस कृतज्ञता को देना ही मानगे। पर कृतज्ञता मे भी कृपणता। यह जघन्य अपराध हे अमार्जनीय पाप।

पैरो की आग को भी देखे

साल का सब से शुभ मगलमय और अलभ्य दिन, आज का दिन है। यह जागने का दिन है नए सकल्प का दिन है और नव उत्थान का।

पुरानी गलतिया के लिए क्षमा याचना कर स्वीकार कर प्रायश्चित कर - तो सदा भविष्य उजला है।

इतालवी महाकवि दाते को - उनकी विश्वविख्यात कृति 'डिवाइन कामेडिया' के किसी अश से नाराज होकर उनकी जन्मभूमि के लोगो ने दाते को अदालत के फैसले के मुताबिक देश निकाले का दड दिया। सैकडो वर्ष के लबे अतराल के बाद अभी-अभी उनके गाव वालो ने मुकद्दमा पुन चलाया और दाते के दड को निरस्त कर उन्हे अपने यशस्वी नागरिक के रूप म आदर दिया। इस फैसले के उल्लास म इटली ने एक दिन की छुट्टी कर अपने आनद को प्रकट किया। इन्हीं दिना जापान ने विश्व युद्ध के दिना मे अपने द्वारा किये गये अत्याचार के लिए क्षमा याचना कर अपने कलक को मिटाया। एक आदर्श कायम किया।

हम एक दूसरे को दड दिलाने म लगे है। अपराधी आगे आकर, क्षमा याचना कर नए रूप म राष्ट्र के रथ को आगे बढाने का व्रत ले। समय है हम केवल पहाड पर जलती आग को ही न देखे अपने पैरो की आग को भी देखे।

डूगर जलती लाय, जोवै सारो ही जगत।
पण जलती निज पाय, रती न सूझै राजिया।

बटोर तथा बाट

शत हस्त समाहर

सहस्र हस्त सकिर

– श्रुति भगवती की आज्ञा ह – तू सा हाथा मे बटोर और हजार हाथो स बाट।

यह कथन कैसा लगता है। समझ क बाहर। पर, ऐसा नहीं – जितना ल उतना ही बाटे, इसम जीवन की सार्थकता कहा।

इस प्रश्न का उत्तर जानने का मतलब है – जीवन की ऊर्जा से परिचित होना।

इसका उत्तर धरती से पूछो। धरती का एक बीज सौंपा, वह उसे अनत बनाकर लाटाती है। पेड की जडा को हमने पानी मे सींचा-वह फूला से, फला से हमारी सूनी झाली का भर देता ह। गाय को खिलाते हैं – घास, वह हम अमृत तुल्य दूध दकर पुष्ट करती है। इस प्रश्न का उत्तर दग – कलाकार, भक्त, सत। समाज न उन्ह क्या दिया कभी तिरस्कार कभी दरिद्रता कभी विष पर, उन्हाने उसके बदले म समाज का अमर कृतिया दीं मीठ बोल दिए, सार्थक वाणी दी, आशा का प्रकाश दिया और भटकते हए हमार हाथा म आस्था का मणिदीप दिया। यही है – सो हाथा स लेना और हजार हाथा से बाटना।

हम चाहे कुछ न कर सक – पर यदि इस भार क प्रति आभार प्रकट करते रहें, तो भी इस कृतज्ञता को देना ही मानगे। पर, कृतज्ञता मे भी कृपणता। यह जघन्य अपराध ह अमार्जनीय पाप।

अधकार को मत कोसो — एक दीप जलाओ

मत कामा अधकार को

एक दीप जलाओ।

हम अधेरे की निंदा करते हैं, या अधेर की सघनता का खौफनाक वर्णन कर आन वाला की हिम्मत ताडते है पर अधेरे से निकलने के मार्ग की तलाश करने की हिम्मत दिलाने वाली ग़ात नहीं करते। या हम इसकी शोध करत ह कि इस अधेरे की जिम्मेवारी किन-किन की है। प्रकाश फलाकर अधरा करन वाला का दड दन क लिए प्रकाश का दुरुपयोग करत हैं।

अधेरा है पर-अधेरे का कोई अस्तित्व नहीं हाता। अधेरे मे शक्ति भी नही होती। अधेरा ह यह कहत-कहते हम जिदगी का बर्बाद कर देते हैं कहना चाहिए - प्रकाश है प्रकाश ही हाता है प्रकाश के अभाव का नाम ही अधकार हे।

इसलिए आइए अधर का कास नहीं।

हम जहा भी खड हो प्रकाश का एक दीप जलाए। जहा प्रकाश हुआ कि अधकार म दरार पड गई वह गया जसे छूमतर हा गया। अच्छाई का बढावे बुराई घटेगी। सुगध फलाए, शक्ति को जगाए, बल को पुकार। शक्ति की सोई रुद्ध धारा जगेगी ता उसे सभालना कठिन-कठिनाई को चट्टान धूल बनकर बिछ जावगी आर धरती का उर्वरा करने म भूमिका बनेंगी। हम तर दूसरा का तार भी। यही तरण-तारण का अर्थ है। आखिर कब तक हम डूबे और दूसरा का डुबाते रहेग। प्रकाश स्तभ बन स्वय प्रभामय आर उजली किरणा स चतुर्दिक् प्रभा फैलाने वाले भी।

इतिहास का मोड — एक दृष्टि

भगवती सीता की तलाश थी। वानर दल 'चहु दिशि' भटकता खोजता कभी उत्साह से, कभी उदासी से थका हारा, तत्पर था।

फिर मिला-सम्पाती, बूढ़ा, जिसके पंख झुलसे हुए-पर, दृष्टि सपन्न। उसने देखा – सीताजी दूर, सागर के उस पार, लंका में, अशोक वन में – सोच में डूबी बैठी हैं।

'मैं देखऊ तुम्ह नाहीं, गीधहि दृष्टि अपार।'

या कहते ही सम्पाती, पुन पंख उगने से, सुदर हो गया। फिर तो सीता-संधान का कार्य उत्साह, पुरुषार्थ और विवेक से सपन्न हो गया।

कभी-कभी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और युग इसी प्रकार तलाश करने में भटक जाता है, भ्रांत ठगा-सा रह जाता है। पथ निर्देश व लक्ष्योन्मुख कौन करेगा?

कोई अभावग्रस्त भाव भरा दृष्टि का धनी मनीषी, मनस्वी संत फकीर, कलाकार, सिद्ध। यही इतिहास का नई दिशा की ओर मुड़ने का मोड बिंदु है।

व्यास भाष्य में कहा गया है – विद्वान् होता है – 'अक्षिपात्र कल्प' (यानी आंख स्वरूप)। द्रष्टा।

'अक्षि पात्र कल्पो हि विद्वान्।'

मागना — एक कला ह

एक भक्त पर दवता खुश हो गए। उन्हान एक पासा दिया और कहा - इस तीन वार फकना और मनचाहा पाना। भक्त बेहद खुश। अपनी स्त्री से सलाह कर तय किया कि हम पहल अपनी गरीबी मिटान के लिए न माग कर अपनी चपटी नाक क बदल म नुकीली नाक मागनी हैं। पासा फका - सुदर-सुदर नाके सार शरीर मे लग गई। व घबराए। दूसरा वर मागा - नाक चली जावे। सारी नाक गायब - यहा तक उनकी चपटी नाक भी गई। शेष बचा - एक मौका। सोचा - अपनी चपटी नाक के बदले केवल नुकीली नाक माग ल।

पर तर्क उठा कि लाग पूछग तो सारी बात बतानी पडगी। इसे सुनकर लोग हमे मूर्ख समझगे इससे यही अच्छा है - वही नाक पहले वाली ही माग। तीसरा पासा फक कर वही पुरानी नाक मागी - जो तत्काल मिल गई।

हम भी जीवन म ऐसे तीन-चार सुनहर मौके मिलते हैं। पर हमे मागना भी नहीं आता। मागते है गलत मागते ह फिर बदले मे वैसी नाशवान चीजे मागने म जीवन अकारथ खो देत हैं।

मानव शरीर पाकर - तुच्छ चीजा को पाने मे शक्ति गवा देते हैं। तभी भगवान् राम ने राम-गीता मे कहा - मनुष्य शरीर तो साधन धाम है मोक्ष का द्वार ह। इसे न समझ कर भोग पदार्थ चाहने का मतलब है - अमृत के बदले म विष चाहना।

नर तनु पाइ विषय मन देही। पलटि सुधा ते सठ विष लेहीं॥

मुझे नई तेजोमयी मॉ मिली

छत्रपति शिवाजी ने दक्षिण के छोटे से राज्य बल्लारी पर आक्रमण किया। वहा की शासिका विधवा मलबाई देसाई जा शार्य की प्रतिमा थी, उसन बहादुरी के साथ छत्रपति की बडी सना का सामना किया। शिवाजी के आतक से बादशाह आरगजेब भी घबराया करता था, पर, वह वीर नारी निर्भय होकर लडी।

मलबाई की छोटी सी सेना अतिम दम तक लडती रही, अत म शिवाजी की जीत हुई। मलबाई आदर से शिवाजी के पास लाई गई।

उन्हाने शिवाजी से कहा – 'एक नारी होने से मेरा उपहास न करो। मै शत्रु हू तुम्हारी मुझे मृत्युदड दो! यह सम्मान ता व्यग्य है। मॅने स्वतत्रता के लिए पूरी शक्ति से सग्राम किया। मरे अनेक वीर खेत रहे हैं। तुम्हारी शक्ति वडी, सेना बडी – इस हार मे भी मैं विजयिनी हू।'

शिवाजी सिहासन से उठे उन्होने हाथ जोडे – 'आप परतत्र नहीं है। बल्लारी स्वतत्र था, स्वतत्र है। मैं आपका शत्रु नहीं पुत्र हू। अपनी तेजस्विनी माता जीजाबाई की मृत्यु के बाद में, मातृहीन हा गया था। मुझे आपमे अपनी माता की वह तेजामयी मूर्ति के दर्शन हुए हैं। आप मेरे अपराध क्षमा करे आर अपना पुत्र स्वीकार कर।'

मलबाई के नेत्र भर आए। वे गद्‌गद कठ से बालीं – 'छत्रपति। सचमुच तुम छत्रपति हो। तुम गारव हो। बल्लारी की शक्ति तुम्हारी सदा सहायक रहेगी।'

महाराष्ट्र के मैनिक छत्रपति शिवाजी की जय बाल रहे थ। पर स्वय छत्रपति न उद्‌घोष किया – 'माता मलबाइ की जय!'

दोनो को रोता कोई न देखे

'राजन्! एकात चाहिए।' एक त्यागी सत ने कहा। महाराजा ने पास के राज-पुरुपा का हटा दिया। तदनतर सत ने कहा - 'महाराज! जाए, किसी दिन देखूगा।'

राजा दर्शन के लिए आते। बीच-बीच म सत 'एकात चाहिए' कहते पर एकात मे कुछ कहते नहीं।

राजा ने एक दिन ऐसा करने पर कहा - 'महात्मन्! आप पता नहीं अपनी बात कह नहीं पा रहे है। यदि आपको मेरे राज्य को छोडकर कुछ भी चाहिए ता वह आपके चरणा म अर्पित हे।

सत - 'मुझ याचना करनी हे। याचना का मतलब हे - रोना। यदि याचक याचना करता हे ता वह रोता है आर देने वाला इनकार करे तो इसका मतलब ह - वह भी राता हे। एकात इसलिए चाहता था कि हम दोना का रोना बाहर के लाग न देख।'

राजा - 'कहिए-क्या आज्ञा हे?'

सत - महाराज! मुझे पास ही जाना हे। मुझे एक तलेवाला एक जोडा जूता ओर पत्तो का छाता चाहिए।'

राजा सुनकर स्तब्ध रह गया। पर, यह बात एक सत्य उजागर कर गई। जा मागता हे वह रोता हे, जो 'नहीं हे' कह इनकार करता है वह भी राता हे।

मागना - रुदन न देना - प्रतिरुदन - ये दो रुदन चतुर्दिक् हैं - व्यक्ति समाज और राष्ट्र के स्तर पर। अब मागना - कौशल है परस्पर छलना है और आत्महीनता के स्थान पर स्पर्धा हे।

भूल समझते ही शूल निकले

एक बीस वर्ष का बौद्ध ब्रह्मचारी था। चतुर था तत्पर था और नया ज्ञान पान का प्यासा। वह अपनी प्रशसा के लिए अनेक कलाआ का ज्ञान प्राप्त करना चाहता था। एतदर्थ वह कई देशा म घूमता रहा। एक व्यक्ति को उसने बाण बनाते देखा, उसके पास रह कर उसने बाण बनाने की कला सीख ली। दूसरे देश मे जाकर नो-निर्माण कला म पारगत बन गया। तीसरे देश मे गृह निर्माण मे निष्णात हो गया। इसी प्रकार वह सोलह देशा मे गया आर सोलह प्रकार की कलाआ मे विशारद हा गया। वह अपने मूल स्थान पर लौटा ओर कहने लगा - 'धरती म ह मुझ सा कोई चतुर?'

भगवान् बुद्ध को इस युवा ब्रह्मचारी पर दया आई। उन्हाने उसे उच्चतर सही विद्या सिखानी चाही। एक दिन वे वृद्ध श्रमण का वेप बनाकर हाथ मे भिक्षा पात्र लेकर उसके पास उपस्थित हुए।

'कौन हो तुम?' ब्रह्मचारी न अभिमान से प्रश्न किया।

'मैं आत्म विजय का पथिक हू।' भगवान् ने कहा।

'क्या मतलब ह तुम्हारे इस कथन का।' ब्रह्मचारी ने कहा।

'बाण बनाने वाला (इपुकार) बाण बना लेता ह। नो चालक नोका बना लेता है। आर गृह निर्माता घर। पर इनसे भी कठिन कार्य हे - मन पर नियत्रण रखना आत्म विजय प्राप्त करना।'

'किस प्रकार?'

'यदि ससार उसकी प्रशसा के गीत गाता हे तो उसका मन शात सुस्थिर ह। यदि ससार गाली दता है तब भी उसका मन उद्वेग विहीन शात और स्थिर ह। जो ऐसा ह वही साधक शाति और निर्वाण प्राप्त करता है - न कि प्रशसा का इच्छुक।' उत्तर था भगवान् का। वह समझ गया अपनी भूल को।

भूल समझते ही पथ के शूल निकल गए। पल्लव ग्राहिता का छाडने से मूल को पकडने से निर्वाण फल तक पहुचने म वह सक्षम हा गया।

सुन्न महल मे दिवला

मंदिर माही दिवला बिना रे अधारू।

यह मानव-शरीर एक मदिर हे। इसके भीतर यदि जगमग दीपक नही धरा हे, ता समझा चारो ओर गहन अधेरा हे।

एक रोशनी ह सूरज की, चाद की और बाहरी बिजली की। पर जब तक ज्ञान का दीपक न जगमगाए, तब तक अधेरा। लाचन-विहीन व्यक्ति के लिए हाथ म रखा दीपक भी व्यर्थ हे।

भगवान् न कहा कि जो मुझ से जुड जाता है उसके भीतर के अधेरे को दूर करके मै ही बुद्धि का भास्वर दीप जगमगा देता हू।

नाशयाम्यात्मभावस्थो, ज्ञान दीपेन भास्वता।

पर यह शर्त कडी हे। हम एक काम कर सकते ह - कुछ न कर कवल प्रम ही कर। प्रम हटी का तल मगा ले।

शर्त हे - प्रम के बाजार से तल मगाना ह। प्रम जहा हानि-लाभ नफ टाट का झगडा नहीं। निव्याज निश्छल प्रेम।

लेकिन भीतर का बनिया चुप हा तब हा कबीर जी ने फरमाया हैं -

मन बनिया बणिज न छाडे
जनम जनम का म्हारा बनिया
अजहु न पूरा तोले रे।

पूरा ताले बिना जीवन म भटकाव हे। ठहराव नही।

सुन्न महल मे दिवला बारि ले।
आसन सो मन डोल रे।

आत्मज्याति के लिए अटल आसन साधे ता काम बने।

सयम दम्भ न बने

तीन हजार वर्ष पूर्व की बात हे। मगध म एक नदी तट पर एक महात्मा रहते थे, सिद्ध पुरुष थे। व मिद्धि क बल मे उड कर मगध नरेश के महल मे आते, भिक्षा प्राप्त करते, उड कर वापस चल जात। मगध नरेश सिद्ध क इम चमत्कार से बहुत आह्लादित थे ओर भाग्य का सराहा करत।

एक बार कार्यवश नरेश का रनिवास सहित बाहर जाना हुआ। सिद्ध के आतिथ्य का भार एक दासी का सोंपा गया।

सिद्ध उड कर आए। महल सूना। दासी भिक्षा दने आई। सिद्ध न दखा - दासी लावण्यमयी ह, वाणी म अमृत है नयना मे आवाहन हे। मिथ्या सयम का बाध टूट गया।

दामी-'पधारिए, भिक्षा लीजिए।' भिक्षा ग्रहण करने के बाद सिद्ध ने उडने की कोशिश की। सयम टूटा, सिद्धि गायब। परकटे पक्षी की तरह मिद्ध न अपने को असहाय पाया। सिद्ध सभला। तपाबल शून्य। इतना ही कहा - 'देवी जाओ-शहर को सूचना दो। बाबा अब पदल आश्रम तक जाएग। दर्शन करनवाले मार्ग म एकत्र हो।'

शहर की गलियो से सिद्ध मब कुछ खोकर एक भिखारी की तरह गुजर रह थे। आस-पास कोई ताकता नही था। इधर-उधर कुत्त भोंक रह थे।

सयम जब दभ बनता है सिद्धि के चक्कर म रहता हे - उसम एक दिन विस्फोट होता है।

सयम जब सवा बनता ह, करुणा बनता ह भक्ति मे ढल लोक मगल बनता हे - तब वह सधता है निभता हे।

विचार, भावना, कार्य और आगे

बहुत से लाग हैं, जिनके विचार सुन, अच्छ लगते है। पर ये शुभ विचार - आगे क्या नहीं बढत। जीवन भर अच्छी बात कहते हैं करते कुछ नहीं - अत म उनम हताशा आ जाती है।

शुभ विचार - फलप्रद कब हात हैं? कस हा - इसके साधना सापान हैं - उन पर विचार कर।

विचार से आगे बढ - विचारा को दिमाग से आगे बढाए, दिल तक लाए आर उन्ह भाव बनाव। इन विचारा का जेसे ही हमने भावना का रूप दिया ता भावना कार्य रूप धारण करेगी। हमारी यात्रा है - शुभ विचार शुभ भावना शुभ कार्य।

कई बधु यहा आकर रुक जाते हैं। दो चार शुभ कर्म करते हैं फिर दिन भर अपने शुभ कर्मों की पशुआ की तरह जुगाली करते हैं। मिलने जाइए - बस कहना शुरू करगे - मैंने यह किया वह किया, कुछ सही कुछ गलत - या डींग मारन की मानसिक बीमारी हा जाती ह और यश सुनने की आधि (मानसिक रुग्णता) से ग्रस्त हा जाते हैं।

शुभ कर्म - हमारा स्वभाव बने स्वभाव हमारा चरित्र बने - यह यात्रा कठिन है। शुभ कर्म ऐसे हा - जसे चाद से चादनी छिटकी हो फूल स सुगध फेली हा - आम के वृक्ष से पका आम टपका हो।

कर्म को स्वभाव बनाना कठिन है और भी कठिन है - स्वभाव को (हेबिट) को चरित्र (करेक्टर) म ढालना।

जैसे ही चरित्र बना तो हमारा सौभाग्य प्रतीक्षारत मिलेगा। आइए - हम यात्रा पर चल। मजिल क पहले रुक नहीं अविश्रात यात्रा। शुभ विचार भाव कर्म स्वभाव चरित्र और सौभाग्य।

ये पशु है — इनके लिये घास

एक राजा को सेठ के धन पर ईर्ष्या हुई। इस पर राजा ने सेठ के पास एक कागज पर चार सवाल लिखकर भेजे। लिखा – दरबार मे हाजिर होकर इनका उत्तर दो, उत्तर सही नहीं होने पर दड मिलेगा।

चार सवाल थे –

१ घटे ही घट, २ बढे ही बढे, ३ घटे भी, बढे भी ४ घटे भी नहीं, बढे भी नहीं। सेठ घबराया। सेठानी चतुर। वह सेठ को साथ लेकर दरबार म गई। साथ मे ले गई दूध का प्याला और घास। पहले उसने दरबार म जाकर चारा प्रश्ना का इस दोहे म उत्तर दिया –

आयु घटे, तृष्णा बढे, जग घट-बढत हमेश।
प्रारब्ध घटे ना बढे जीव को, सुन नरपति सुरतेश॥

– हे राजन्, समझदार महाराज! १ आयु घटती ही घटती है। २ तृष्णा बढती ही बढती है। ३ जग बढता है, घटता हे – यही क्रम है। ४ प्रारब्ध न घटता है न बढता हे।

उत्तर से सब दरबारी खुश। फिर राजा ने पूछा – यह दूध और यह घास क्या ?

सेठानी ने कहा – 'राजन्! यह दूध का कटोरा आपके लिए है, क्याकि आप अभी बालबुद्धि के है और आपके कर्मचारी नासमझ पशुवत् हैं – इनके लिए घास।

'यदि आप पूरे समझदार हाते और ऐसे नासमझ दरबारी न होते तो हम इस प्रकार परेशान न करते।' सेठानी की इस बुद्धिमत्ता और हिम्मत को देखकर राजा बहुत खुश हुआ।

अपनी शक्तियो को पहचाने

किसान ने कहा - 'भाइयो। फुर्ती स खेत का काम समटा, क्याकि म सिह से नहीं डरता, साझ से डरता ह।' पेडा म छिपे सिह न यह बात सुन ली वह साझ क डर क मार दुबक कर बैठ गया। साझ क होत ही किसान व उसके साथी खत से घर की ओर चल पडे। पर सिह साझ के डर के मारे सिकुडा रहा।

अधेरा बढ चला। एक कुम्हार गधे की तलाश म इधर आया। उसन सिकुडे जानवर को गधा समझ कर दो-चार लट्ठ जमाए। सिह न समझा - यही साझ है वह मुझस बलवान ह, अब मुझ छाडेगी नहीं। सिह उठकर चल पडा। कुम्हार ने समझा उसका गधा है। वह घाट पर आया और उसने सिह-गर्दभ पर कपडा का गट्ठर लाद दिया। सिह आखे मूदे इसे बलवान साझ की करतूत समझता रहा। फिर लट्ठ की मार पडते ही वह चल पडा। पीछे-पीछे कुम्हार।

रास्ते म एक और सिह मिला। उसन सिह को समझाया। पर सिह ने कहा - 'साझ बहुत बलवान है हमसे।' सिह ने समझाया - 'साझ कुछ नही होती। वह तो अधेरे का नाम हे।' आखिरकार गधे बने सिह ने अपने स्वरूप को पहचाना और गट्ठर फक कर गर्जन करने लगा। अब कुम्हार के होश ठिकाने आ गए। कहानी का सिह अपने स्वरूप को समझ गया।

पर, हम अपने स्वरूप को भूल अपनी शक्तिया से अनजान क्या किसी के गधे बने जीवन का भार नही ढो रहे हैं?

स्वामी विवेकानद का क्या सिह गर्जन हम सुन पाएगे - 'सिह पुत्रो। उठो जागो। तुम न गधे हो न भेड बकरी हो। साक्षात् ब्रह्म हो। अनत शक्तिया के पुज।'

सीखने के दरवाजे खुले है

फसल से लहराता हराभरा खेत था। वहा तोते आते और चुग्गा कर उड जाते। खेत का रखवाला खुडका करता, तोते उडते और फिर आकर जम जाते। खेत के रखवाले ने उनमे एक सुदर ताते को भी देखा, जा हो सकता है शुकराज (तोता का राजा) हो, वह अपने चाच का धान की बालिया से भर कर ले जाता, जबकि दूसर तोते पेट भर कर उड जाते।

रखवाले ने खेत के मालिक से यह सब बताया। मालिक - 'तुम उस तोते को जाल मे फसाकर ले आओ।' रखवाला उस तोते को जाल मे फसाकर ले गया। मालिक तोते को देखकर मोहित हो गया और पूछ बैठा - 'प्यारे ताते। तू किस लोभ से पेट भरने के बाद भी चाच भर कर ले जाता है?' तोता - 'मालिक। मैं कर्ज चुकाता हू। मैं कर्ज चढाता हू। मै आगे का इतजाम करता हू। ये तीन काम प्रतिदिन करता हू।'

मालिक - 'इसका मतलब?'

तोता - 'मैं अपने बूढे बाप के लिए ले जाता हू - यह कर्ज चुकाना हुआ। मै अपने छोटे-छाटे बच्चा के लिए ले जाता हू - यह कर्ज चढाना हुआ। दूसरे अपग बिना पख वाले पक्षियो की सेवा करता हू - यह आग का इतजाम है।'

उत्तर सुनकर मालिक ने रखवाले से कहा - 'यह तोता मेरा गुरु ह - इसे छोड दो।'

मालिक ने अपने आपसे कहा - 'इस खेत के अब तीन मालिक हैं। बूढे, बच्चे आर अपग। मैं हू - एक अदना सवक। यह गुरु की आज्ञा है।' आदमी जहा से भी सीखे-दरवाजे खुले हैं।

क्रोध को दूर करने के उपाय

लोग कहते हैं क्रोध आता है, आना चाहिए, पर आटे म नमक के बराबर। कभी-कभी आवे-यह स्वाभाविक है। बुराई को देखकर चेहरा तमतमावे नहीं तो फिर आदमी क्या हुआ मिट्टी का लौंदा! सही बात तो यह है कि एसा पवित्र क्रोध पुण्य प्रकोप ता किसी सयमी का ही आता है। नहीं ता हम क्रोध करते हैं, न उसमे समझ, न विवेक न सामाजिक चेतना न सतुलन और न यथापराध मात्रा! महात्मा जेम्स का विचार है - 'मनुष्य का बहुत सा बल क्राध की उत्तजना म नष्ट हा जाता है।' क्राध को हम शराब और अफीम बनाकर काम म लाते हैं। शराबी की भाति क्राधी मनुष्य पहले लाल-पीला हाता है फिर आवश के मद होने पर क्रोध अफीम का काम करता है और मनुष्य की बुद्धि को मद बना देता है। क्रोध का कुफल - बुद्धिनाश यानी सर्वनाश।

क्रोध का दूर करने के उपाय हैं —

(१) शक्तिशाली बनिए।

(२) दयालु बनिए।

(३) क्षमाशील बनिए।

क्याकि क्षमा वीरा का भूषण है।

फिर लगेगा - बहुत स लाग क्रोध के नहीं दया के पात्र हैं।

जीवन

चितन मनन

श्रोता कहा

कथा वाचक बेहद खुश था क्योकि कथा क बीच मे सुनने वाले आते आर बीच म उठकर चले जात। पर, एक बुढिया पक्की श्रोता मिली। वह आकर बेठती जमी रहती आर बीच-बीच म आसू बहाती। कथावाचक पुलकित था कि चला - काइ एक सच्चा श्रोता मिला जो कथा के प्रभाव के कारण प्रम से उमडकर अश्रुपात करता हे।

एक दिन कथावाचक ने बुढिया से पूछा - 'माताराम! आप धन्य हें, आप के कारण यह कथा जम रही हे। आप बीच-बीच मे जो आसू बहाती है - इसका क्या कारण है?' बुढिया - 'महाराज! आप जब कथा बाचते समय सिर हिलाते हें ता मुझे मेरी भेड याद आती हें, वे सभी एक बीमारी के कारण इसी प्रकार सिर हिलाती-हिलाती मरी थीं, अत में सोचती हू कि तू बचारा भी या ही कही मर न जावे! इस कारण मरे आसू आते रहते हें।' यह सुनकर कथावाचक सुन्न हा गया। अपने पत्रे समेटकर चुपचाप चल पडा। दूसरे दिन कथावाचक नहीं आया। श्रोता आए, प्रतीक्षा करते रहे आर निराश हो चले गए।

आज भी यदि काई कथावाचक ईमानदारी से श्रोता की तलाश करे और स्वय ईमानदार हा ता प्रवचन के हजारा स्थल बद सूने पडे मिल। प्राय श्रोता ढागी हैं आगे बैठने की अकड लिए ह। कहीं लोभ है कहीं समय काटने की विवशता है और अपने को विज्ञापित करन की हाड ह। कबीर साहब फरमाते हें 'बकता ता बहुते मिल, गहता मिला न कोय।'

मैं सन्त हूँ — मेरा धर्म है, क्षमा

एक राज्य म असतोष, शिकायते, गडबड और घाटालों की भरमार। शासक किकर्त्तव्यविमूढ। एक दिन उसने नगर क एक त्यागी सत को बुलाया और कहा – 'महात्मन्। भ्रष्टाचार और कदाचार से छुटकारा कैसे हो? सत ने कहा – 'राजन्। मुझे एक सप्ताह तक शासन सौंप द फिर सब ठीक ठाक हो जाएगा।

शासक ने घोषणा कर दी कि एक सप्ताह तक शासन का सपूर्ण भार सत क ऊपर।

सत न घोषणा की – 'राज्य मे किसी को किसी के प्रति शिकायत हो निर्भय होकर अर्जी दे छोटे-बडे का लिहाज नही। शिकायते आने लगीं। दफ्तर भर गया। गड्ढे खुदवाए और उनमे शिकायते डाली जाने लगीं। गड्ढे भी भर गए।

पाचवे दिन से न्याय की दिन आया। शिकायत पत्र निकाले जाने लगे।

सत ने जाच कर तुरत वर्ष
की कैद। राजा का साला पकडा
के कारण जेल मे डाले गए। अब
लगी। सभी जगह चुप्पी सारे अ
घबडाया।

सातव दिन – सत ने

'राजन्। मैं सत हू। न्याय मेरा
इन अपराधियो का राजनीति के
करता हू।'

सत ने पूछा – किसी को कोई
को वापस लेने का सभी तेयार हो गए

न्याय सीधा हो अधा हो बहरा

कृतज्ञता — दुर्लभ गुण

महर्षि वाल्मीकि पूछ रहे हैं देवर्षि नारद से। 'आप कोई ऐसा चरित्र जानते हैं, अधुना इस लोक मे, जो धर्मज्ञ हो ओर साथ ही 'कृतज्ञश्च' भी हो। आश्चर्य वाल्मीकि हजारा गुणिया को जानते ह, पर, उनकी खोज है - कृतज्ञ की। कृतज्ञता - स्वय म काई अपने गुण नही, वह ता दूसरा के गुणा के प्रति पूज्य बुद्धि ह। उपकार की स्वीकृति ह। कृतज्ञ व्यक्ति नम्र होता ह, अहकार विहीन होता है और दूसरो के महत्त्व को झुककर स्वीकार करता है। नारदजी ने कहा - 'हा है - सूर्यवशी राम।'

आज के युग का भी यही प्रश्न है, कितने कम होते हे - कृतज्ञ व्यक्ति! कोई किसी के लिए कुछ करे, अपनी गर्दन भी काट कर दे दे, ता भी शिकायत, कोई कमी की वात। कहगा - 'गर्दन तो मेरे लिए काट कर रखी, पर, जरा टेढी कटी थी।' वह तो सामने वाला गया, इधर खाने वाला का स्वाद भी नहीं आया। कहत हैं - कृतघ्नता सब से बडा पाप है, उसका काई प्रायश्चित्त भी नहीं। पर, सुनता कान हे आज अनेक व्यक्ति वड कद वाले हैं, वे किसी के कधे पर खडे हैं ओर उसके सहारे का नकारत ऊपर चढ जाते हें। कहते है - हम तो अपने-अपने बल यूते पर बढे हैं —

इस भीड म जिस शक्स का कद सब से वडा है।
वो शख्म किसी और के कधे पर खड़ा है।

यदि कृतज्ञता जरा फलने लगे तो यह भीड एक समाज म वदल जाएगा। समाज लहरनुमा वनेगा - जहा हर लहर कहेगी - 'पहल आप आग मैं भी आई।'

कोई अयोग्य नही

जीवन को सही जीना है तो हम इसके उजले पहलू से इसको समझ। विश्वास कर, विश्वास मिलगा। सभी म अनत सभावनाए हैं, विकास व प्रगति क अनत मार्ग ह - जिन पर सभी मे बढने की क्षमताए हैं। इसी का नाम श्रद्धा हे।

श्रद्धावान् का मिलता ह, सशयात्मा का विनाश होता है यह ध्रुव सिद्धात है।

मानवीय शक्तिया क गोरव को प्रकट करने वाली ऐसी घोपणा कभी-कभी ही प्रकट होती हे -

अमत्राक्षर नास्ति नास्तिमूलमनौपधम्।
अयोग्य पुरुपो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभ ॥

इस ससार मे कोई ऐसा अक्षर नहीं हे जा मत्रबल सिद्धिदाता न हो। कोई भी ऐसा पेड-पौधा नहीं - जा किसी न किसी रूप मे दवाई के रूप मे व्यवहत होने की शक्ति से रहित हो।

अयोग्य तो कोई भी पुरुप कभी भी होता ही नहीं। असल म याजक का जोडने वाले का या परख करने वाला का ही अभाव हाता है।

बस-यौजक मिल जाए तो सभी अपनी निहित योग्यता व शक्तिमत्ता से विश्व का चमत्कृत कर सकते हैं।

याजक दुलभ-भजक सुलभ। यही विडबना है।

बात करामात

बहुत से मिलते हैं, बैठे रहते हे - गुमसुम। जेसे गूगे, मुह फुलाए, मुरझाए, गमगीन, उदास। पर, मिल कर बेठने का मजा तब जब बातचीत का दौर चले। बात करामात है। सयोगवश जब कोई चतुर मनुष्य बातचीत का मीठा सिलसिला शुरू कर देता है तो आनद उमड पडता है। बातचीत, लेक्चर नहीं, उपदेश नहीं, गुरु गभीर चर्चा नही - मधुर, मोहक, सभी को न्यौतती एक कला।

बात मे मनोरजन हो, बुद्धिमानी हो, विनोद हो।

यहा पर कवि शिरोमणि शेक्सपियर से भी पूछा जावे। उनका कहना है - 'बातचीत प्रिय हो, पर ओछी न हो। चुहल की हो, पर बनावट लिए न हो। स्वच्छद हो, पर अश्लील न हो। विद्वतापूर्ण हो, पर दभयुक्त न हो। अनोखी हो, पर असत्य न हो।'

सर विलियम टेपल - 'पहली बात तो सचाई, दूसरी समझदारी, तीसरी विनोद-पूर्णता और चौथी चतुराई।' ये हैं - वार्तालाप के गुण।

बातचीत मजेदार तब बनती है - जब छोटे-बडे सभी भागीदार बने। कहने के साथ सुनने का धैर्य भी रखा जाए। बोलो, बुलाओ भी।

अकबर शिवाजी रणजीत सिह आदि ये पढे लिखे नहीं थे - पर बुद्धिमानो का साथ रख कर, उनसे बातचीत कर - जानकारी मे बढ चढ कर हो गए और बडो बडो के कान काटने वाले बन गए। बात करामात।

कोई अयोग्य नहीं

जीवन को सही जीना है तो हम इसके उजले पहलू से इसको समझ। विश्वास कर विश्वास मिलेगा। सभी मे अनत सभावनाए हैं, विकास व प्रगति के अनत मार्ग ह - जिन पर सभी मे बढने की क्षमताए ह। इसी का नाम श्रद्धा ह।

श्रद्धावान् को मिलता हे सशयात्मा का विनाश होता है, यह ध्रुव सिद्धात है।

मानवीय शक्तियो के गौरव को प्रकट करने वाली ऐसी घोषणा कभी-कभी ही प्रकट होती हे -

अमत्राक्षर नास्ति नास्तिमूलमनौषधम्।
अयोग्य पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभ ॥

इस ससार म कोई ऐसा अक्षर नही है जो, मत्रबल सिद्धिदाता न हो। कोई भी ऐसा पेड-पौधा नहीं - जो किसी न किसी रूप मे दवाई के रूप म व्यवहृत होने की शक्ति से रहित हो।

अयोग्य तो कोई भी पुरुष कभी भी होता ही नहीं। असल मे योजक का जोडने वाले का, या परख करने वाला का ही अभाव होता है।

बस-याजक मिल जाए तो सभी अपनी निहित योग्यता व शक्तिमत्ता से विश्व को चमत्कृत कर सकते हैं।

योजक दुर्लभ-भजक सुलभ। यही विडबना हे।

बात करामात

बहुत से मिलते हैं, बैठे रहते हें - गुमसुम। जसे गूगे, मुह फुलाए, मुरझाए, गमगीन, उदास। पर, मिल कर बठने का मजा तब जब बातचीत का दौर चले। बात करामात है। सयागवश जब कोई चतुर मनुष्य बातचीत का मीठा सिलसिला शुरू कर देता है ता आनद उमड पडता है। बातचीत, लेक्चर नहीं उपदेश नहीं, गुरु गभीर चर्चा नहीं - मधुर, मोहक सभी को न्यौतती एक कला।

बात में मनोरजन हो, बुद्धिमानी हो, विनोद हो।

यहा पर कवि शिरामणि शक्सपियर से भी पूछा जाव। उनका कहना है - 'बातचीत प्रिय हो पर ओछी न हा। चुहल की हा, पर बनावट लिए न हा। स्वच्छद हो, पर अश्लील न हो। विद्वत्तापूर्ण हो पर दभयुक्त न हो। अनाखी हो, पर असत्य न हो।'

सर विलियम टपल - 'पहली बात तो सचाई दूसरी समझदारी, तीसरी विनाद-पूर्णता ओर चौथी चतुराई।' ये हें - वार्तालाप के गुण।

बातचीत मजेदार तब बनती है - जब छाटे-बड सभी भागीदार बने। कहने के साथ सुनने का धैर्य भी रखा जाए। बोलो बुलाओ भी।

अकबर, शिवाजी रणजीत सिह आदि ये पढे लिखे नहीं थे - पर बुद्धिमाना को साथ रख कर उनसे बातचीत कर - जानकारी म बढ चढ कर हो गए आर बडा बडा के कान काटन वाले बन गए। बात करामात।

ऐ निराश, टूटे इसान !

स्मृति पुरस्कार है स्मृति अभिशाप है। कभी-कभी हम पुरानी मधुर स्मृतिया का इतनी बुरी तरह स याद करते हैं कि ये याद सालती रहती है रह रह कर कचोटती ह और वर्तमान को और भी त्रासद बना दती ह। पुरानी सफल याद वतमान की जरा सी असफलता को या बढाकर दिखाती हैं कि जस काई शोकान्तिका हा - कारी ट्रजडी। जिसम भरा ह - केवल नाश ध्वस आर हाहाकार। अत बुद्धिमत्ता इसी म हे - जा सामने ह - वही यथार्थ है। आआ हम इसे वदले।

हम यह कहना बद कर - पछतावे के गलित स्वरा म - 'दूध हाता, बूरा हातो कचाला हाता अर दूध रा कचाला भरकर अर बूरो आगली स्यू मिलाकर पीता पण अत्र तो आगली-आगली आपकी रेई हे।'

- हमारे यहा बडी मात्रा म दूध हुआ करता खाड शक्कर भी खूब कटार का क्या कहना दूध भरा कटारा अगुली से मिला मिला कर शक्कर का घुलाना ओर फिर गट-गट पीना। हाय। अब कहा - केवल अगुलिया-ही-अगुलिया अपनी बची हैं।'

-ऐ निराश टूटे इसान, झुके दब इसान - जब तक पाच अगुलियो का हाथ तरे पास है - सब तरे हाथ मे ह। लक्ष्मी सरस्वती और गाविद भी।

कराग्रे वसते लक्ष्मी , कर मूल सरस्वती।
कर मध्ये तु गोविद , प्रभाते कर दर्शनम्॥

विचार का सकट विश्वास का सकट

दो पीढियो म पहल भी अतराल होता था ाच म दूरी होती थी। पर, वहुत कम। वह दूरी बडा क प्रति श्रद्धा और छाटा के पति स्नेह के कारण कम हा जाती थी और विकास का पथ महज सरल हाता था। पर विश्व के अत्यत निकट आने के कारण विचारो के बदलाव तीव्रगामी हैं जिन्हे सभाल पाता कठिन ह।

विचारा की दूरी का सकट वास्तव म विश्वास का सकट ह। हम किसी पर विश्वास नहीं अपने पर भी नहा। इसलिए दानो पीढिया म सवाद नहीं, विवाद, अपवाद और प्रवाद ह।

जीवन कहता योवन से
कुछ देखा तुमने मतवाले?
यौवन कहता सास लिए चल
कुछ अपना सबल पाल।

\- कामायनी

जीवन यानी अनुभव कहता ह - यौवन स दखकर चल मतवाल। यानी नशे म धुत्त ऐस ही मत चलो, जरा सभल कर दखकर।

पर यावन कहा सुनता ह   वह कहता ह - 'चुप। मास लते चला यानी या ही चुपचाप जीना हा ता जीओ और तुम्ह कुछ चाहिए तो ल ला आर बस।'

एक ओर होश है निष्क्रिय अनुभवा से भार से दबा भयभीत-सा दूसरी ओर है क्रुद्ध यावन-उन्मत्त, कवल जोश से उफनता नकारता।

दाना मे कहीं मिलन बिदु तलाशें तो यौवन का जाश अधा न हा कर - अनुभव के विवक से गति ही नही सच्ची प्रगति प्राप्त कर सकता है। यही युग की माग ह।

ऐ निराश, टूटे इसान!

स्मृति पुरस्कार है स्मृति अभिशाप है। कभी कभी हम पुरानी मधुर स्मतिया का इतनी बुरी तरह से याद करत ह कि ये याद सालती रहती ह रह रह कर कचाटती ह आर वर्तमान का और भी त्रासद बना दती ह। पुरानी सफल याद वतमान की जरा सी असफलता को या बढाकर दिखाती ह कि जसे काई शोकातिका हो कोरी टजडी। जिसमे भरा है केवल नाश ध्वस आर हाहाकार। अत बुद्धिमत्ता इसी म है जा सामने ह वही यथार्थ हे। आओ हम इसे बदल।

हम यह कहना बद कर पछतावे के गलित स्वरा मे दूध होतो बूरा हाता कचाला हातो अर दूध रा कचोलो भरकर अर बूरो आगली स्यू मिलाकर पीता पण अब तो आगली आगली आपकी रैई हे।'

हमार यहा बडी मात्रा म दूध हुआ करता खाड शक्कर भी खूब कटार का क्या कहना दूध भरा कटारा अगुली से मिला मिला कर शक्कर का घुलाना और फिर गट गट पीना! हाय! अब कहा - केवल अगुलिया ही अगुलिया अपनी बची हैं।

ऐ निराश टूटे इसान झुके दब इसान जब तक पाच अगुलिया का हाथ तर पास है सब तर हाथ म हे। लक्ष्मी सरस्वती और गाविद भी।

कराग्र वसत लक्ष्मी, कर मूल सरस्वती।
कर मध्ये तु गाविद, प्रभाते कर दर्शनम्॥

राष्ट्र-भाषा सम्मेलन कैसा!

सन् १९१७ मे राष्ट्रीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कलकत्ता मे हुआ था। उसी के साथ हुआ राष्ट्रभाषा सम्मेलन। सब अग्रेजी मे बाले, यहा तक अध्यक्ष भी! पर, गाधीजी उन दिनो जैसी जानत थे, वैसी हिदी म ही बोले। गाधीजी न कहा - 'लोकमान्य हमारे सबसे बडे नेता ह। वह चाहे जो कर महत्व का है। परतु राष्ट्रभाषा का सभापति यदि विदेशी भाषा म बोले ता यह राष्ट्रभाषा सम्मेलन कसा?'

लोकमान्य - 'आप ठीक कहते हे, पर मेरी तो लाचारी हे। म जरा भी हिदी नहीं जानता।' बडी विनम्रता से गाधीजी ने कहा 'आप मराठी जानते हैं। सस्कृत जानते हें। ये हमारे देश की भाषाए ह।' उस क्षण के बाद हवा ही बदल गई। एक व्यक्ति भी अग्रेजी मे नहीं बोला। उस दिन सध्या के समय लोकमान्य एक सार्वजनिक सभा मे भाषण देने गए। तिलक - 'आज में पहल-पहल हिदी मे बोल रहा हू। मेरी भाषा सबधी कितनी गलतिया हागी, यह में नहीं जानता, पर में मानता हू कि हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी है ओर हमे इसमे ही अपना काम करना चाहिए।'

८० वर्ष के बाद भी हम कहा हैं, मूल्याकन करे! भारतीय अस्मिता के इन दो प्रहरिया को उत्तर देने के लिए कोई हे - हाजिर! या केवल मीठा-मीठा गप।

'हमे दु ख तो न दे' — यही सेवा

एक आदमी भैंस खरीद लाया। खरीदते समय देखा कि वह भैंस एक वक्त म पाच किलो दूध देती हे पर जब भैंस लाया तो भैंस अकड गई और दूध दे ता बहुत कम और फिर एक बूद भी नहीं। बेचारा भैंस की खूब सेवा करता। इधर भैंस मौका पाकर बाहर निकल जाती और कभी कहीं, कभी कहीं-इधर-उधर भटकती।

वह मालिक उसे तलाश करते किसी के घर पहुचा। वहा भैंस गोबर कर रही थी। आदमी के भीतर कवि भी बेठा था वह हाथ जोड कर भैंस मे कहने लगा - सबको सुनाकर —

'दूधा वास्ते भैस लायो, रुपया लेकर उधार।
धाया थारी, छाछ राबडी, पोठा करण पधार॥'

'हे भैंस! में तुझ दूध के लिए लाया था। देखा खूब मिलेगी छाछ राबडी। रुपए भी उधार पडे हैं। खेर तेरी छाछ राबडी तो भरपाई। कम-से-कम पोठा (गाबर) करने तो आप घर पधार - इतने को ही मैं बहुत मान लूगा।'

भैंस तो क्या समझ पाई होगी। आज भी सारा राष्ट्र माना फरियाद के स्वरा म कह रहा है - सत्ता लालुपा से - 'आप चाहे हमारी गरीबी दूर न कर हमारा कोई काम न कर - पर, हमे दुख तो न द। छिपे चार डाकू बन कर लूट तो नहीं। इसे ही हम आपकी सवा मान लगे।' धाया थारी छाछ राबडी।

राष्ट्र-भाषा सम्मेलन कैसा!

सन् १९१७ मे राष्ट्रीय काग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कलकत्ता मे हुआ था। उसी के साथ हुआ राष्ट्रभाषा सम्मेलन। सब अग्रेजी मे बोले, यहा तक अध्यक्ष भी! पर गाधीजी उन दिनो जैसी जानते थे वैसी हिंदी मे ही बोले। गाधीजी ने कहा - 'लोकमान्य हमारे सबसे बडे नेता हैं। वह चाहे जो करे, महत्त्व का है। परतु राष्ट्रभाषा का सभापति यदि विदेशी भाषा मे बोले तो यह राष्ट्रभाषा सम्मेलन कैसा?'

लोकमान्य - 'आप ठीक कहते हैं, पर मेरी तो लाचारी है। मैं जरा भी हिंदी नहीं जानता।' बडी विनम्रता से गाधीजी ने कहा 'आप मराठी जानते हैं। सस्कृत जानते हैं। ये हमारे देश की भाषाए है।' उस क्षण के बाद हवा ही बदल गई। एक व्यक्ति भी अग्रेजी मे नहीं बोला। उस दिन सध्या के समय लोकमान्य एक सार्वजनिक सभा मे भाषण देने गए। तिलक - 'आज मैं पहले-पहल हिंदी मे बोल रहा हू। मेरी भाषा सबधी कितनी गलतिया होगी, यह मैं नहीं जानता पर मैं मानता हू कि हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी है और हमे इसमे ही अपना काम करना चाहिए।'

८० वर्ष के बाद भी हम कहा हैं, मूल्याकन करें। भारतीय अस्मिता के इन दो प्रहरियो को उत्तर देने के लिए कोई है - हाजिर! या केवल मीठा-मीठा गप!

'हमे दु ख तो न दे' — यही सेवा

एक आदमी भैंस खरीद लाया। खरीदते समय देखा कि वह भैंस एक वक्त म पाच किलो दूध देती हे पर, जब भस लाया तो भैंस अकड गई ओर दूध दे तो बहुत कम और फिर एक बूद भी नहीं। बेचारा भैंस की खूब सेवा करता। इधर भैंस मोका पाकर बाहर निकल जाती और कभी कहीं, कभी कहीं-इधर-उधर भटकती।

वह मालिक उस तलाश करत किसी के घर पहुचा। वहा भैंस गोबर कर रही थी। आदमी के भीतर कवि भी बैठा था वह हाथ जाड कर भैंस से कहने लगा - सबको सुनाकर —

'दूधा वास्ते भैस लायो, रुपया लेकर उधार।
धाया थारी, छाछ राबडी, पोठा करण पधार॥'

'हे भैंस! में तुझ दूध के लिए लाया था। देखा खूब मिलेगी छाछ राबडी। रुपए भी उधार पडे हैं। खैर, तेरी छाछ राबडी तो भरपाई। कम-से-कम पाठा (गाबर) करने तो आप घर पधार - इतने को ही मैं बहुत मान लूगा।'

भैंस ता क्या समझ पाई होगी। आज भी सारा राष्ट्र माना फरियाद के स्वरा मे कह रहा है - सत्ता लालुपा से - 'आप चाहे हमारी गरीबी दूर न करे हमारा कोई काम न कर - पर, हम दुख तो न द। छिप चार डाकू बन कर लूट ता नहीं। इसे ही हम आपकी सवा मान लग।' धाया थारी छाछ रावडी।

त्यौहार का दिन आज ही

त्यौहार का दिन कौन सा! इसकी प्रतीक्षा कैसी! मुहूर्त की, शुभ घडी का इतजार क्यो? मान ले वह दिन आज ही का हे। प्रत्येक दिन त्योहार। मगल मुहूर्त।

प्रश्न उत्साह का हे - उमडती उमग का है।

'मानना चाहता है आज ही?
तो मान ले
त्यौहार का दिन
आज ही होगा।
उमगे यो अकारण ही नहीं उठतीं,
न अनदेखे इशारो पर
कभी यो नाचता है मन।'

बस-विलब न कर। क्षण खोया तो जीवन खोया।

'खुले-से लग रहे है द्वार मदिर के?
बढा पग
मूर्ति के शृगार का दिन
आज ही होगा।'

- कवि बालकृष्ण राव

'बढा पग' - यह प्ररणा मात्र नहीं। ये हें इतिहास के यदा-कदा जाने वाले नए उजल विरल अध्याया के शीर्षक।

उद्वेग नहीं, मधुर वेग

जीवन न ज्वार है, न भाटा है। कभी-कभी सामूहिक उन्माद से 'मास हिस्टीरिया' से हम घिर जाते हैं। पर यह जीवन का उफान है, जा उतर जाता है। बाध तोडती नदिया किनारे को डुबोकर बहने वाले नद भूकप के धक्के ये बवडर, ये अधड - स्वस्थ जीवन के प्रतीक नहीं।

शरद् के आगमन पर देखते ह, पहाडी नाले थम गए हैं केवल बह रही ह - नितनीरा नदिया शात प्रशात धीर-गभीर होकर। अब उद्वेग नहीं मधुर वग है। अब आवर्त नहीं - केवल कल्लोल हे लाल लहरिया का क्रीडा कौतुक।

जीवन प्रशात हे - महासागर की तरह। वह सदा अक्षोभ्य है, कभी क्षुब्ध नहीं होता। जो गहरा ह वह भी ऊचा हे। जो ऊचा हे वह भी गहरा हे। हिमाचल ऊचा ह, स्थिर। सागर नीचा हे गहरा है भीतर प्रशात। सच-जीवन न ज्वार हे और न भाटा।

वह है नितनीरा नदियो सा - सतत प्रवाही।

त्यौहार का दिन आज ही

त्यौहार का दिन कौन सा। इसकी प्रतीक्षा केसी। मुहूर्त की, शुभ घडी का इतजार क्यो? मान ले वह दिन आज ही का हे। प्रत्येक दिन त्योहार। मगल मुहूर्त।

प्रश्न उत्साह का है – उमडती उमग का हे।

'मानना चाहता है आज ही?
तो मान ले
त्यौहार का दिन
आज ही होगा।
उमगे यो अकारण ही नहीं उठतीं,
न अनदेखे इशारो पर
कभी यो नाचता हे मन।'

बस-विलब न कर। क्षण खाया तो जीवन खोया।

'खुले-से लग रहे है द्वार मदिर के?
बढा पग
मृति के शृगार का दिन
आज ही होगा।'

– कवि बालकृष्ण राव

'बढा पग' – यह प्रेरणा मात्र नहीं। ये हैं इतिहास के यदा-कदा लिखे जाने वाले नए उजले विरल अध्याया के शीर्षक।

उद्वेग नहीं, मधुर वेग

जीवन न ज्वार हे, न भाटा ह। कभी-कभी सामूहिक उन्माद से 'मास हिस्टीरिया' से हम घिर जाते हैं। पर यह जीवन का उफान ह, जा उतर जाता हे। बाध तोडती नदिया, किनारे को डुबोकर बहने वाले नद भूकप के धक्के ये बवडर, ये अधड - स्वस्थ जीवन के प्रतीक नहीं।

शरद् के आगमन पर देखते ह पहाडी नाले थम गए हैं केवल बह रही है - नितनीरा नदिया शात प्रशात धीर-गभीर हाकर। अब उद्वेग नहीं मधुर वेग हे। अब आवर्त नहीं - केवल कल्लाल हे लोल लहरिया का क्रीडा कोतुक।

जीवन प्रशात हे - महासागर की तरह। वह सदा अक्षाभ्य हे कभी क्षुब्ध नहीं होता। जो गहरा हे वह भी ऊचा हे। जो ऊचा हे वह भी गहरा हे। हिमाचल ऊचा हे स्थिर। सागर नीचा है गहरा है भीतर प्रशात। सच-जीवन न ज्वार हे ओर न भाटा।

वह हे नितनीरा नदिया सा - सतत प्रवाही।

त्यौहार का दिन आज ही

त्योहार का दिन कौन सा। इसकी प्रतीक्षा कैसी। मुहूर्त की शुभ घडी का इतजार क्या? मान ले वह दिन आज ही का है। प्रत्येक दिन त्यौहार। मगल मुहूर्त।

प्रश्न उत्साह का है - उमडती उमग का है।

'मानना चाहता है आज ही?
तो मान ले
त्यौहार का दिन
आज ही होगा।
उमगे यो अकारण ही नहीं उठतीं,
न अनदेखे इशारा पर
कभी यो नाचता है मन।'

बस-विलब न कर। क्षण खाया तो जीवन खोया।

'खुले-से लग रहे है द्वार मदिर के?
बढा पग
मूर्ति के शृगार का दिन
आज ही होगा।'

- कवि बालकृष्ण राव

'बढा पग' - यह प्रेरणा मात्र नहीं। ये हैं इतिहास के यदा-कदा लिखे जाने वाले नए उजले विरल अध्याया के शीर्षक।

उद्वेग नही, मधुर वेग

जीवन न ज्वार है न भाटा है। कभी-कभी सामूहिक उन्माद से 'मास हिस्टीरिया' से हम घिर जाते हैं। पर यह जीवन का उफान है जो उतर जाता है। बांध तोडती नदिया, किनारे को डुबाकर बहने वाले नद भूकप के धक्के ये बवडर, ये अधड – स्वस्थ जीवन के प्रतीक नहीं।

शरद् के आगमन पर देखते ह, पहाडी नाले थम गए है केवल बह रही है – नितनीरा नदिया शात प्रशात धीर-गभीर होकर। अब उद्वेग नहीं मधुर वग है। अब आवर्त नहीं – केवल कल्लोल है लोल लहरिया का क्रीडा कौतुक।

जीवन प्रशात है – महासागर की तरह। वह सदा अक्षोभ्य है कभी क्षुब्ध नही होता। जो गहरा ह, वह भी ऊचा है। जो ऊचा है वह भी गहरा है। हिमाचल ऊचा ह, स्थिर। सागर नीचा ह गहरा है भीतर प्रशात। सच-जीवन न ज्वार है और न भाटा।

वह है नितनीरा नदिया सा – सतत प्रवाही।

चितन मनन

त्योहार का दिन आज ही

त्योहार का दिन कौन सा! इसकी प्रतीक्षा कैसी! मुहूर्त की शुभ घडी का इतजार क्या? मान ले वह दिन आज ही का हे। प्रत्येक दिन त्योहार। मगल मुहूर्त।

प्रश्न उत्साह का है – उमडती उमग का हे।

'मानना चाहता हे आज ही?
तो मान ले
त्यौहार का दिन
आज ही होगा।
उमगे यो अकारण ही नहीं उठतीं,
न अनदेखे इशारो पर
कभी यो नाचता है मन!'

बस-विलब न कर। क्षण खाया तो जीवन खोया।

'खुले-से लग रहे है द्वार मदिर के?
बढा पग
मूर्ति के शृगार का दिन
आज ही होगा।'

– कवि बालकृष्ण राव

'बढा पग' – यह प्रेरणा मात्र नहीं। ये हैं इतिहास के यदा-लिखे जाने वाले नए उजले विरल अध्याया के शीर्षक।

उद्वेग नही, मधुर वेग

जीवन न ज्वार हे न भाटा है। कभी-कभी सामूहिक उन्माद से 'मास हिस्टीरिया' से हम घिर जाते ह। पर यह जीवन का उफान है जो उतर जाता ह। बाध तोडती नदिया, किनारे का डुबाकर वहने वाले नद भूकप के धक्के ये बवडर ये अधड - स्वस्थ जीवन के प्रतीक नहीं।

शरद् के आगमन पर देखते हे पहाडी नाले थम गए हैं केवल बह रही है - नितनीरा नदिया शात प्रशात, धीर-गभीर होकर। अब उद्वेग नहीं मधुर वेग है। अब आवर्त नहीं - केवल कल्लोल हे लाल लहरिया का क्रीडा कौतुक!

जीवन प्रशात हे - महासागर की तरह। वह सदा अक्षोभ्य है कभी क्षुब्ध नहीं होता। जो गहरा हे वह भी ऊचा है। जो ऊचा है वह भी गहरा है। हिमाचल ऊचा हे स्थिर! सागर नीचा हे, गहरा है भीतर प्रशात! सच-जीवन न ज्वार है ओर न भाटा।

वह है नितनीरा नदिया सा - सतत प्रवाही!

त्योहार का दिन आज ही

त्योहार का दिन कौन सा। इसकी प्रतीक्षा कैसी। मुहूर्त की, शुभ घडी का इतजार क्यो? मान ले वह दिन आज ही का है। प्रत्येक दिन त्योहार। मगल मुहूर्त।

प्रश्न उत्साह का है - उमडती उमग का है।

'मानना चाहता है आज ही?
तो मान ले
त्योहार का दिन
आज ही होगा।
उमगे यो अकारण ही नहीं उठतीं,
न अनदेखे इशारा पर
कभी यो नाचता है मन।'

बस-विलब न कर। क्षण खोया तो जीवन खोया।

'खुले-से लग रहे है द्वार मदिर के?
बढा पग
मूर्ति के शृगार का दिन
आज ही होगा।'

- कवि बालकृष्ण राव

'बढा पग' - यह प्रेरणा मात्र नहीं। ये हैं इतिहास के यदा-कदा लिखे जाने वाले नए उजले विरल अध्यायो के शीर्षक।

बकरिया भी गुरु

साझ का सुहावना समय था। डूबते सूरज की लालिमा चारो ओर छिटक रही थी। नदी के शात किनारे पर एक दार्शनिक सत बेठे बेठे नदी की लाल लहरिया म घुलती सोने सी अरुणाई को निहार रह थे।

इतने म एक गडेरिया काधे पर लकडी लिए आया। उसके पास की नकरिया भी पानी पीने के लिए दौडी-दाडी आई। बकरिया प्यासी थीं वे किनारे के पास अपना मुह ल जाकर 'हुडु' 'हुडु' करती 'गट-गट' पानी पी रही थी। नदी के तट पर बेठा वह फक्कड इन यकरिया के पानी पीने को रसपूर्वक दखकर तन्मय हो रहा था।

उसक मन म एक विचार कोंधा। ये बकरिया जैसे उसे उपदेश दे रही ह – 'बना हे झूठा त्यागी दिगबर फकीर। हमे देख, हमारे पास पानी पीने का कोई पात्र नहीं, हाथ भी नहीं फिर भी मजे मे पानी पी रही हें तेरा यह कमडलु क्या परिग्रह नहीं।'

इस सत मर्मी ने अपने पास के कमडलु को दूर लुढका दिया। उससे सदा के लिए अलविदा।

यकरिया का गुरुभाव से स्वीकारा।

वे सत थे ग्रीस क महान् दार्शनिक डायोजिनियस।

व्यक्ति - टूटता क्यो?

व्यक्ति टूटता क्या है विघटित क्या होता है अपनी शक्तिया को भूल कर हताश क्या हाता है?

इसक कारण हैं - तीन जिनके हाने से वह बिखर जाता है।

१ भूत के लिए पछताना

२ भविष्य की चिता

३ वर्तमान की व्याकुलता

हम वर्तमान म हैं, पर जीते ह भूत क पछतावे मे। यह पश्चात्ताप हमारे वर्तमान का हमारे विश्वास का, हमारी कर्मण्यता को कुठित कर देता है। सामने दीखता है - भविष्य का अधेरा। भविष्य की चिताए - जो हमारे वर्तमान का उत्साहहीन बना देती है।

यानी हम वर्तमान को मिटा देते ह। या तो भूत का भूत हम निगल लेता है या भविष्य का प्रेत हमे डराता है।

भूत गया - उससे हटे भविष्य पैदा नहीं हुआ - फिर कैसा डर। पूरी शक्ति से वर्तमान को ऊर्जा के साथ उत्साह व उल्लास के साथ - जीने का अर्थ है - भविष्य के प्रकाश द्वार म प्रवेश।

बकरिया भी गुरु

साझ का सुहावना समय था। डूबते सूरज की लालिमा चारो ओर छिटक रही थी। नदी के शात किनारे पर एक दार्शनिक सत बेठे बेठ नदी की लोल लहरियो म घुलती सोने सी अरुणाई को निहार रह थे।

इतने मे एक गडेरिया काधे पर लकडी लिए आया। उसके पास की बकरिया भी पानी पीने के लिए दौडी-दोडी आई। बकरिया प्यासी थीं वे किनारे के पास अपना मुह ले जाकर 'हुडु' 'हुडु' करती 'गट-गट' पानी पी रही थी। नदी के तट पर बठा वह फक्कड इन बकरिया के पानी पीन को रसपूर्वक देखकर तन्मय हो रहा था।

उसके मन म एक विचार कौंधा। ये बकरिया जेसे उसे उपदेश दे रही हैं - 'बना है झूठा त्यागी दिगबर फकीर। हम देख हमारे पास पानी पीने का कोई पात्र नहीं हाथ भी नहीं फिर भी मजे म पानी पी रही हैं। तेरा यह कमडलु क्या परिग्रह नहीं।'

इस सत मर्मी ने अपने पास के कमडलु को दूर लुढका दिया। उससे सदा के लिए अलविदा।

बकरिया का गुरुभाव से स्वीकारा।

व सत थे ग्रीस के महान् दार्शनिक डायोजिनियस।

व्यक्ति - टूटता क्यो?

व्यक्ति टूटता क्यो हे विघटित क्या होता हे, अपनी शक्तिया को भूल कर हताश क्या होता है?

इसक कारण हैं - तीन जिनके हाने से वह बिखर जाता है।

१ भूत के लिए पछताना

२ भविष्य की चिता

३ वर्तमान की व्याकुलता

हम वर्तमान म है पर जीते हैं भूत के पछतावे म। यह पश्चात्ताप हमारे वर्तमान का हमार विश्वास को हमारी कर्मण्यता को कुठित कर देता है। सामने दीखता है - भविष्य का अधेरा। भविष्य की चिताए - जो हमार वर्तमान को उत्साहहीन बना देती हैं।

यानी हम वर्तमान को मिटा दते हैं। या ता भूत का भूत हम निगल लेता है या भविष्य का प्रेत हम डराता ह।

भूत गया - उसस हट भविष्य पैदा नहीं हुआ - फिर कैसा डर। पूरी शक्ति स, वर्तमान का ऊर्जा के साथ उत्साह व उल्लास क साथ - जीन का अर्थ है - भविष्य क प्रकाश द्वार म प्रवेश।

चिन्ता के ये कीडे

एक पेड है - अमेरिका मे। यह अब खोखर है। चार सो वर्षो से ऊपर इसकी उम्र है। कहते हैं इसके जीवन काल मे चोदह वार बिजलिया गिरीं और इसने इन वर्षों मे तूफान व हिमानियो के असख्य आघात सहे। फिर भी जिदा रहा। फिर अचानक नीचे स इसकी छाल को कुतरने वाले गोबरेला ने धावा बोल दिया। कीडा न इसके अदर रास्ता बनाया और इसे धराशायी कर दिया।

उन कीडो ने जिसे आदमी अपनी अगुलियो ओर अगूठे के बीच मसल सकता है।

हमारा जीवन भी इस प्रकार के विशाल शक्तिशाली वृक्ष की तरह है। जीवन म तूफान आते हैं, अन्धड उठते हैं, बिजलिया कडकती हैं - पर जीवन का कुछ नहीं बिगडता। पर, जब चिता रूपी ये कीडे अदर घुस जात है तो हम मात खा जाते हैं। ये चिताए जो प्राय काल्पनिक हाती है। ये चिताए जो तुच्छ हाती हैं। ये चिताए गधे के रूप मे सिह की खाल ओढे आती हैं।

हम साहस को सभाले रखे। 'हिम्मत की ही किम्मत' है। चिताओ का गट्ठर न बनाए। साहस, धैर्य एव आत्मविश्वास के प्रकाश के सामने चिताए अधेरे की तरह गायब हो जाती हैं।

चेत सके तो चेत

बिन रखवारे बावरे, चिडिया खाया खेत।

आधा परधा ऊबरे, चेत सके तो चेत॥

फटे दूध पर रोना बेकार! जो गया सो गया। सवाल है – इस समय करणीय क्या है। बस, जो भी बचा है, 'आधा परधा' जो भी बचा है – उसी पूजी से आगे बढा जा सकता है। सब गया, पर मेरी बुद्धि, मेरी मति मेरी श्रद्धा बची है – तब समझो कुछ भी खोया नहीं। इसी आत्मविश्वास की अखूट पूजी से जीवन को नए रूप म सजाया-सवारा जा सकता है।

'चेत सके तो चेत' – अभी कुछ नहीं बिगडा है। 'गई सो गई अब राख रहि को' चाहे एक सास बची हो – उसे भी ऊर्जा के साथ जिया जा सके तो यही जीवन की सार्थकता है। प्रमाद नहीं, एक क्षण का भी प्रमाद नहीं।

एक सास हो, आध सास हो

मोदमयी उत्साह भरी हो

सासो की क्या गणना जीवन?

अष्टावक्र ने कहा – 'राजन्! घोडे पर चढने के लिए रकाब पर पैर रखने म जितना समय लगता है – उतना ही समय मुक्त होने मे।' एक ही क्षण मे जनक का अधेरा मिटा और वे बन गए – विदेह! जीवन्मुक्त!' जब जागे तभी सवेरा।

चिन्ता के ये कीडे

एक पेड है - अमेरिका म। यह अब खोखर है। चार सौ वर्षो से ऊपर इसकी उम्र है। कहते हें, इसके जीवन काल मे चौदह बार बिजलिया गिरीं और इसने इन वर्षो म तूफान व हिमानियो के असख्य आघात सहे। फिर भी जिदा रहा। फिर अचानक नीचे स इसकी छाल को कुतरने वाले गोबरेलो ने धावा बोल दिया। कीडो ने इसके अदर रास्ता बनाया और इसे धराशायी कर दिया।

उन कीडा ने जिसे आदमी अपनी अगुलिया और अगूठे के बीच मसल सकता है।

हमारा जीवन भी इस प्रकार के विशाल शक्तिशाली वृक्ष की तरह है। जीवन मे तूफान आते हें, अन्धड उठते है, बिजलिया कडकती ह - पर जीवन का कुछ नहीं बिगडता। पर जब चिता रूपी ये कीडे अदर घुस जाते है तो हम मात खा जाते हें। ये चिताए जो प्राय काल्पनिक हाती ह। ये चिताए जो तुच्छ होती हें। ये चिताए गधे के रूप म सिह की खाल ओढे आती ह।

हम साहस का सभाले रखे। 'हिम्मत की ही किम्मत' है। चिताआ का गट्ठर न बनाए। साहस, धैर्य एव आत्मविश्वास के प्रकाश के सामने चिताए अधेरे की तरह गायब हो जाती हें।

चेत सके तो चेत

बिन रखवारे बावरे, चिडिया खाया खेत।
आधा परधा ऊबरे, चेत सके तो चेत॥

फटे दूध पर रोना बेकार। जो गया सो गया। सवाल है - इस समय करणीय क्या है। बस, जो भी बचा है, 'आधा परधा' जो भी बचा है - उसी पूजी से आगे बढा जा सकता है। सब गया, पर मेरी बुद्धि मेरी मति, मेरी श्रद्धा बची है - तब समझो कुछ भी खोया नहीं। इसी आत्मविश्वास की अखूट पूजी से जीवन को नए रूप मे सजाया-सवारा जा सकता है।

'चेत सके तो चेत' - अभी कुछ नहीं बिगडा है। 'गई सा गई अब राख रहि को' चाह एक सास बची हो - उसे भी ऊर्जा के साथ जिया जा सके तो यही जीवन की सार्थकता है। प्रमाद नहीं, एक क्षण का भी प्रमाद नहीं।

एक सास हो, आध सास हो
मोदमयी उत्साह भरी हो
सासो की क्या गणना जीवन?

अष्टावक्र ने कहा - 'राजन्! घाडे पर चढने के लिए रकाब पर पैर रखन मे जितना समय लगता है - उतना ही समय मुक्त हान म।' एक ही क्षण म जनक का अधेरा मिटा और वे बन गए - विदेह! जीवन्मुक्त!' जय जागे तभी सवेरा।

चिन्ता के ये कीडे

एक पेड है - अमरिका म। यह अब खाबर ह। चार सो वर्षो से ऊपर इसकी उम्र है। कहते हें इसके जीवन काल म चौदह बार बिजलिया गिरीं ओर इसने इन वर्षो म तूफान व हिमानिया के असख्य आघात सह। फिर भी जिदा रहा। फिर अचानक नीचे से इसकी छाल को कुतरने वाले गाबरेला ने धावा बाल दिया। कीडा ने इसके अदर रास्ता बनाया और इसे धराशायी कर दिया।

उन कीडा ने जिसे आदमी अपनी अगुलियो आर अगूठे के बीच मसल सकता है।

हमारा जीवन भी इस प्रकार क विशाल शक्तिशाली वृक्ष की तरह ह। जीवन म तूफान आते हं, अन्धड उठते हैं, बिजलिया कडकती हे - पर जीवन का कुछ नहीं बिगडता। पर जब चिता रूपी ये कीडे अदर घुस जाते ह तो हम मात खा जाते हें। ये चिताए जो प्राय काल्पनिक होती है। ये चिताए जो तुच्छ होती हैं। ये चिताए गधे के रूप मे सिह की खाल ओढे आती हें।

हम साहस को सभाले रखे। 'हिम्मत की ही किम्मत' हे। चिताआ का गट्ठर न बनाए। साहस धैर्य एव आत्मविश्वास के प्रकाश के सामने चिताए अधेरे की तरह गायब हो जाती हें।

ये चावल - मेरे शुभाशी

इतिहास मे यह पहली घटना हे - जहा एक मा ने अपने प्राणप्यारे राजकुमार को कहा - 'तू यागी बन जा।' गापीचद की मा ने अपने उमडते वात्सल्य को समेट कर आसुआ को रोक कर कहा - 'बेटा। तू योगी बन जा।' क्याकि वह जानती थी कि यागी बनकर ही गापीचद काल के कराल करा से बच सकता हे।

गुरु गोरखनाथ की झोली म अपने पुत्र को डालते हुए मा ने गापीचद का तीन चावल दिए। गापीचद - 'मा। य चावल क्या?'

'बेटा। ये चावल नहीं है - ये मेरे शुभाशी हैं। पहला चावल हे - अभेद्य दुर्ग अत्र तू गुरु की छाया म सदा सुरक्षित रहेगा।

दूसर चावल का मतलब है - हमेशा तुम्ह राजसी भाजन मिलेगा।' गापीचद - 'यह कैसे?' मा - 'जब तू साधना करते-करते भूख के करारेपन का अनुभव कर जा भी भिक्षान्न ग्रहण करेगा - उसम दिव्य स्वाद आवेगा। और इस तीसरे चावल का अर्थ है - 'तुम्ह सदा सुख शय्या मिलगी।' यानी ध्यान करत करते जत्र तू थक जावगा चाह शिलाआ पर भी सोवेगा तो भी तुम्ह सदा मखमली शय्या का सुखद अनुभव हागा।'

सच्चा योगी सदा सुरक्षित है सतुष्ट भोजी है और निद्रारूपी देवी को गाद म चिता रहित हा याग निद्रा म मग्न है। जिसके लिए सम्राट् भी तरसत हैं।